Nautanki ka Rangmanch: Kala aur Takneek

(Kanpur ke Sandarbh Mein)

A Dissertation Submitted to the University of Hyderabad in Partial Fulfilment of the Requirements for the Award of

MASTER OF PHILOSOPHY IN HINDI

By

LOKENDRA PRATAP
(17HHHL12)

Under the Supervion of
Prof. S. Chaturvedi

Deptt. of Hindi

SCHOOL OF HUMANITIES

UNIVERSITY OF HYDERABAD

HYDERABAD-500046

Telangana, India

June 2019

नौटंकी का रंगमंच: कला और तकनीक

(कानपुर नौटंकी के सन्दर्भ में)

हैदराबाद विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में **एम .फिल**. **हिन्दी** उपाधि हेतु प्रस्तुत

लघु शोध-प्रबंध

शोध–निर्देशक

प्रो. एस. चतुर्वेदी

शोधार्थी

लोकेन्द्र प्रताप

(17HHHL12)

हिंदी विभाग

मानविकी संकाय, हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद-500046

तेलंगाना, भारत

जून **2019**

DECLARATION

I, ***Lokendra pratap*** *hereby declare that the work embodied in the present dissertation entitled* ***"Nautanki ka rangmanch: kala aur takneek (Kanpur ke sandarbh mein)"*** **"नौटंकी का रंगमंच: कला और तकनीक (कानपुर के सन्दर्भ में)"** *carried out under the supervision of* ***Prof. S. Chaturvedi,*** *Deptt. Of Hindi, School of Humanities, for the award of Master of Philosophy in Hindi from University of Hyderabad, is an original work of mine, and to the best of my knowledge no part of this dissertation has been submitted for the award of any research degree or diploma at any University.*

I hereby agree that my dissertation can be deposited in Sodhganga / INFLIBNET.

Date (**LOKENDRA PRATAP**)

Place: Hyderabad **Reg. No. 17HHHL12**

CERTIFICATE

This is to certify that the research embodied in the present dissertation entitled ***"Nautanki ka rangmanch: kala aur takneek (Kanpur ke sandarbh mein)"*** **"नौटंकी का रंगमंच: कला और तकनीक (कानपुर के सन्दर्भ में)"** *has been carried out by* **Lokendra Pratap** *under my supervision for the full period prescribed under M. Phil. ordinances of the university*

I declare to the best of my knowledge that no part of the thesis was earlier submitted for the award of a research degree of any university or institute.

(Prof. S. Chaturvedi)

Supervisor & Head of Deptt.

Deptt. Of Hindi, School of Humanities
University of Hyderabad

(Prof. Sarat Jyotsna)

Date:
Place: Hyderabad

Dean School of Humanities
University of Hyderabad

नौटंकी की

उन तमाम स्त्री कलाकारों के नाम

जिनके हिस्से में सिर्फ 'बदनामी' ही आयी...

विषय-सूची

प्रस्तावना .... i- iv

अध्याय: एक

भारतीय रंगमंच और लोकनाटक 1-44

1.1 **रंगमंच**

1.1.1 रंग

1.1.2 मंच

1.1.3 रंगमंच की परिभाषा एवम्स्वरूप

1.1.4 नाट्य और रंगमंच

1.2 **भारतीय रंगमंच का इतिहास**

1.2.1 प्रारम्भ

1.2.2 मध्यकाल

1.2.3 आधुनिक काल

1.3 **लोकनाटक**

1.3.1 फोक (Folk)

1.3.2 लोक

1.3.3 लोक-नाटक की परिभाषा

1.3.4 इतिहास

1.3.5 लोक नाटकों का वर्गीकरण

1.3.6 प्रमुख भारतीय लोक नाटक

निष्कर्ष

अध्याय: दो

नौटंकी की विधागत विवेचना.........................45-86

2.1. **नौटंकी: नाम एवम्नाट्यरूप**

2.1.1. नौटंकी शब्द की व्युत्पत्ति

2.1.2. परिभाषा
2.1.3. सांगीत और नौटंकी
2.1.4. स्वाँग,भगत, ख्याल और नौटंकी
2.1.5. पारसी थियेटर और नौटंकी
2.2 नौटंकी का इतिहास
2.2.1. आरंभिक काल
2.2.2. आधुनिक काल
2.3 नौटंकी रंगमच का स्वरूप
2.3.1. नौटंकी का प्रस्तुतीकरण
2.3.2. नौटंकी में अभिव्यक्ति विषय
2.3.3. संगीत-गायन और वाद्ययंत्र
2.3.4. नौटंकी में छंद-विधान एवम्भाषा
2.3.5 नौटंकी आलेख
2.3.6 नौटंकी के नाट्य मंच की तकनीक
2.3.7 नौटंकी का रंगा (विदूषक)
2.4 नौटंकी की शैलियाँ
2.4.1. नौटंकी की हाथरस शैली
2.4.2. नौटंकी की कानपुर शैली
निष्कर्ष

अध्याय: तीन
कानपुर शैली का नौटंकी रंगमंच……………… 87-117

3.1 कानपुर नौटंकी शैली का उद्भव और विकास
3.2 कानपुर नौटंकी शैली में अभिव्यक्त विषय
3.3 कानपुर नौटंकी शैली के रंगमंचीय उपदान
3.3.1 संगीत-विधान एवं गायन
3.3.2 नक्कारा एवम् अन्य वाद्य यंत्र

3.3.3 छंद-विधान एवं भाषा
3.3.4 अभिनय एवं नृत्य
3.3.5 कानपुर शैली के नौटंकी आलेख
3.3.6 कानपुरी नौटंकी का मंच
3.3.7 विदूषक या रंगा या जोकर

3.4 कानपूर नौटंकी शैली के प्रमुख कलाकार
3.4.1 त्रिमोहन उस्ताद
3.4.2 श्रीकृष्ण पहलवान
3.4.3 गुलाब बाई
निष्कर्ष

उपसंहार.. 118-128
संदर्भ ग्रंथ-सूची 129-132

प्रस्तावना

आधुनिक कला एवम् साहित्य पर सर्वाधिक प्रभाव उपनिवेशवादी सांस्कृतिक वर्चस्व का पड़ा। नाट्यकला पर इस सांस्कृतिक वर्चस्व का प्रभाव इतना गहरा पड़ा कि नाटककारों ने पारंपरिक रंगमंच त्याग कर पोर्सेनियम रंगमंच (महानगरों में बड़े सभागारों में खेला जाने वाला रंगमंच) को गर्व से अपना लिया। जबकि भारतीय समाज तथा नाटक की समाजिकता के लिए यहाँ के पारंपरिक रंगमंच सबसे अधिक अनुकूल हैं। इस तरह औपनिवेशिक संस्कृति का प्रभाव यह रहा कि एक सम्पूर्ण सामाजिक नाट्यविधा जिसका स्थान जनता के बीच होना था वह आज प्रोसेनियम थिएटर में प्रवेश कर गयी, जबकि होना यह चाहिए था हमारी लोक परम्परागत नाट्य बड़ी रंगशालाओं में होने वाले नाटकों को उठा कर आम जनता में लाते तभी नाटक की समाजिकता सिद्ध होती। नौटंकी रंगमंच एक समय में जनता के द्वारा निर्मित जनता का रंगमंच था। आज के उपभोक्तावादी समय में लोक कलाओं में अनवरत विकास हेतु आवश्यक है कि इन कलाओं में शोध, प्रशिक्षण एवम् निरंतर नूतन प्रयोग किए जाएँ। आज भी लोकनाटकों से प्रेम इतना है कि विद्युतीय यंत्रों (मोबाइल, कंप्यूटर, लैपटाप आदि) में भी वह लोक कलाओं का आनंद लेते हैं। इसलिए हमारी लोकविधाएँ प्रासंगिक तो हैं। लेकिन किन्हीं कारणों से वह काल के गाल में समा गईं हैं।

जब भी मैं दिल्ली के बड़े सभागारों में नाटक की प्रस्तुति देखने गया तो समझ में आया कि नाटक का जनतंत्र और उसकी समाजिकता सिर्फ किताबी बात बनकर रह जाती है। मेरे विचार में आया कि नौटंकी रंगमंच जैसा लोक प्रचलित माध्यम हिन्दी क्षेत्र में वर्षो से चला आ रहा है। उस कलात्मक विशाल रंगमंच की क्या कोई प्रासंगिकता

नहीं बची? यहीं से नौटंकी रंगमंच पर शोध का विचार आया। दिल्ली में रहते हुए नौटंकी के बड़े कलाकार और अध्यापक पंडित रामदयाल शर्मा और डॉ देवेंद्र शर्मा से नौटंकी के बारे एक प्रशोंत्तरी चर्चा हुई। उसके बाद नौटंकी रंगमंच पर आधारित दो लेख लिखे तो इस लोक विधा में अधिक रुचि हुई। जब एम.फिल. करने हैदराबाद विश्वविद्यालय आया तो शोध-विषय के रूप में गुरुवर प्रो. सच्चिदानंद चतुर्वेदी जी ने इस पर रुचि दिखाई फलस्वरूप मुझे शोध की अनुमति मिल गई। इस शोध-कार्य के दौरान मेरे मस्तिष्क में यही प्रश्न घूमता रहा कि उपनिवेशवादी संस्कृति में पल्लवित आधुनिक हिन्दी रंगमंच क्या आम व्यक्तियों के लिए उपलब्ध है? अगर नहीं है तो ऐसे में नाटक की समाजिकता कहाँ से बनती है? हिन्दी साहित्य के पास नौटंकी जैसी तमाम लोक विधाएँ इस महानगरीय रंगशालाओं वाले रंगमंच की अपेक्षा हाशिए पर क्यों छोड़ दी गईं। दूसरा प्रश्न यह रहा कि क्या नौटंकी रंगमंच अब इस काबिल नहीं रहा कि अपने समाज की वह रंगमंचीय क्षुधा मिटा सके? जबकि भारत के बड़े नाटककार भारतेन्दु हरिश्चंद्र से लेकर मराठी के विजय तेंदुलकर, कन्नड के गिरीश कर्नाड, कम्बाड़, हबीब तनवीर और बादल सरकार आदि सभी ने इन लोक कलाओं में कार्य करके उत्तम दर्जे के नाटक इस समाज को दिए। क्या यह कार्य नौटंकी में संभव नहीं है? यह नाट्य अपने समाज-संस्कृति को अभिव्यक्त करने में सफल नहीं है? इसके लिए नौटंकी पर शोध करना आवश्यक जान पड़ा।

हिन्दी रंग मंडलियाँ अपने सामने एक बड़ी समस्या आर्थिक संकट की मानती हैं। आज प्रत्येक नाट्य मंडलियों का संचालक या निर्देशक आर्थिक समस्या के गिरफ्त में फसे रहते हैं। इस कारण वह सरकार से उम्मीद लगाए बैठे रहते हैं कि वहाँ से कुछ आर्थिक सहायता मिले तो वह प्रदर्शन में समृद्ध हो पाएँ। इस दृष्टि नौटंकी ने शोध के लिए आकर्षिक किया। नौटंकी का जब प्रचलन रहा तब उसे आर्थिक समस्या का पहाड़

लाघना नहीं पड़ा। इससे संबन्धित कलाकारों के लिए नौटंकी सम्पन्न जीविका का साधन रही। फिर आज हमारा यह शहरी रंगमंच जो बड़े-बड़े सभागारों में टिकट लगाकर प्रस्तुति होती है तो आर्थिक विपन्नता की समस्या क्यों ? जबकि नौटंकी में यह आर्थिक समस्या नहीं है। क्या इस संरचना से आधुनिक हिन्दी रंगमंच कुछ कर सकता है? इन प्रश्नों के भी उत्तर जिज्ञासा से नौटंकी पर शोध करने का मन बना।

इन्हीं कुछ प्रश्नों से सामना करते हुए प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध '**नौटंकी रंगमंच: कला और तकनीकी' (कानपुर नौटंकी शैली के संदर्भ में)** तैयार किया गया है। इस लघु शोध-प्रबंध का मुखपृष्ट एवम् शीर्षक पर कार्यालयी त्रुटियों के कारण 'नौटंकी का रंगमंच: कला और तकनीक' (कानपुर के संदर्भ में) लिखा गया है। इस कार्यालयी त्रुटि के लिए खेद है, इसके लिए क्षमा चाहता हूँ।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध में गुणात्मक शोध किया गया है। इसमें प्रत्यक्ष अवलोकन पद्धति, साक्षात्कार पद्धति, नृजातीय पद्धति में साहित्य अध्ययन के प्रयोग से और नौटंकी से संबन्धित प्राप्त ग्रन्थों का अध्ययन करके यह लघु शोध-प्रबंध तैयार किया गया है। व्यक्तिगत अध्ययन पद्धति का भी उपयोग शोध में किया है जिसके माध्यम से पूर्व प्राप्त साहित्य का अन्वेषण किया एवम् नौटंकी के प्राप्त आलेखों का विवेचन एवम् विश्लेषण करके शोध प्रश्नों के उत्तर तक पहुँचा हूँ। नौटंकी के विषयों पर दृष्टि डालते हुए कथात्मक पद्धति का भी सहारा लिया गया है।

लघु शोध-प्रबंध को मुख्य तीन अध्यायों में विभाजित है। प्रथम अध्याय 'भारतीय रंगमंच और लोकनाटक' है। इसमें रंगमंच के शाब्दिक अर्थ से लेकर उसके विभिन्न अर्थो में प्रयोग को लेकर विवेचना की गयी है। भारतीय रंगमंच के विकास और रंगमंच की लोक परंपरा पर दृष्टिपात किया गया है। लोक नाटकों को उनके पारिभाषिक

स्वरूप और भारत में व्यापक प्रभाव एवम् लोकनाटक की परंपरा का अध्ययन है। दूसरा अध्याय नौटंकी की विधागत विवेचना पर आधारित है। इस अध्याय में नौटंकी का विधागत अन्वेषण है, नौटंकी रंगमंच के इतिहास, विकास और उसके स्वरूप का समेकित अध्ययन है। तीसरा अध्याय 'कानपुर शैली का नौटंकी रंगमंच' नाम से है। इसमें कानपुर शैली की नौटंकी और उसके मंचीय उपदान एवम् नाट्य आलेख आदि पर व्यापक प्रकाश डाला गया है। कानपुर शैली अन्य नौटंकी की शैलियों से अपने प्रथक स्वयं को किया उन तत्वों की परख कर उसके अभिव्यक्तगत विषयों को भी विवेचित किया गया है। कानपुर नौटंकी हिन्दी रंगमंच को किन बिन्दुओं पर प्रभावित कर रही यह एक बड़ा प्रश्न है, जिसका विवेचन भी इस अध्याय में किया गया।

अनुसंधान की चिंतन-प्रक्रिया परिश्रम, धैर्य और विवेक से होकर गुजरती है। शोध-निर्देशक के रूप में प्रो. एस. चतुर्वेदी सर ने मुझे न केवल शोध संबंधी विभिन्न दिशाओं से अवगत कराया, बल्कि मुझे इस शोध-कार्य के स्वतंत्र चिंतन का अवसर भी दिया। इस स्वतंत्र चिंतन में समय-सीमा के प्रति प्रो. एस. चतुर्वेदी सर की उदारता भी सराहनीय है, जिन्होंनें शोध-निर्देशक की भूमिका में धैर्य के साथ सहयोग किया। इसके अतिरिक्त शोध-कार्य के दौरान उनका प्रोत्साहन और संवेदनशील होना मेरे लिए विशेष मायने रखता है। इस लघु शोध-प्रबंध एवम् दृष्टि प्रदान करने लिए प्रो. एस. चतुर्वेदी सर के प्रति विशेष आभार प्रकट करता हूँ। इस शोध के सलाहकार डॉ. भीम सिंह सर का भी आभार और धन्यवाद। वह लोकसाहित्य के विद्वान हैं। उनका उन्हीं के मौखिक मुहर से इस शोध को मैं पूर्ण मानूँगा। इसी के साथ विभागीय अध्यापकों को भी उसी श्रद्धा और प्रेम से धन्यवाद जिनसे प्रत्यक्ष या अप्रत्येक्ष रूप से मैं सीखता रहा हूँ। विभागीय कार्यालय का भी धन्यवाद जहाँ से हर संभव सहायता जरूरत पड़ने पर मिलती रही। और अंत में तमाम शुभ चिंतक दोस्तों और मित्रों का भी धन्यवाद।

अध्याय: एक

भारतीय रंगमंच और लोकनाटक

1.1 रंगमंच

नौटंकी रंगमंच क्या है ? जानने से पहले 'रंगमंच' शब्द का अनुशीलन आवश्यक है। रंगमंच शिष्ट साहित्यालोचन का शब्द है। इस शब्द में जो नाटक (काव्य) और अभिनय-मंच आदि को लेकर विचार विविधता है वह लोक-नाटकों में नहीं है। लोक की लगभग सभी नाट्य-कलाओं में काव्य और मंच का भेद नहीं होता है। इस कारण परंपरागत लोक नाट्य-विधा के अनुशीलन के लिए रंगमंच शब्द सम्पूर्ण नाट्यकला के अवयवों को सारगर्भित करता है। रंगमंच शब्द को लेकर विभिन्न प्रकार के वाद-विवाद रहें हैं इस कारण शोध-निबंध की दृष्टि को ध्यान में रखते हुए इसका शाब्दिक अध्ययन कर लेना आवश्यक है। हिन्दी में रंगमंच शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता रहा है, जिसमें रंगमंच का एक अर्थ रंगशाला, रंगमंडप या नाटक खेलने वाले स्थान के अर्थ में लिया जाता है जो बहुत ही सीमित है। दूसरे व्यापक अर्थ में 'रंगमंच' से तात्पर्य एक नाट्य-रूपक या 'थिएटर फॉर्म' से है। रंगमंच के शाब्दिक अध्ययन हेतु इसकी निर्मिति में विराजमान दो शब्दों पर दृष्टि डालना आवश्यक है; एक रंग और दूसरा मंच ।

1.1.1 रंग: 'रंग' शब्द 'संस्कृति के 'रञ्ज' धातु से व्युत्पन्न है। धात्वर्थ के अनुसार 'रंग' शब्द अर्थ –पु. (सं. रंग्(गति)+अत्र् वा रञ्ज (राग) + घञ अर्थात् किसी दृश्य पदार्थ का वह गुण जो उसके प्रकार या रूप से भिन्न होता है और जिसका अनुमान

केवल आँखों से होता है। वर्ण जैसे नीला, पीला, लाल सफ़ेद या हरा रंग।[1] आज विद्वान रंगमंच में इस रंग (जिनका अर्थ वर्ण से है) का भी एक अपना महत्व स्वीकार करते हैं। यह रंगमंच की एक विशेषता को रेखांकित करता हैं, लेकिन रंग शब्द का अर्थ सिर्फ वर्ण; नीला, लाल आदि से ही न होकर नाट्यशास्त्रीय विशेष अर्थों में भी है। हिन्दी शब्द सागर में 'रंग' शब्द के अर्थ नृत्य, गीत, अभिनय-स्थल, युद्ध-स्थल, यौवन, प्रभाव, क्रीडा, दृश्य, उमंग, आनंद, प्रसन्नता, काण्ड, अनुराग, ढंग, शोभा, सौन्दर्य आदि बताया है ।[2] रंग शब्द के इन अर्थों से रंगमंच का अभिप्राय भी लिया जाता है । हिन्दी के शब्दकोशों में इन दो प्रकार के ही अर्थ दिए गए हैं इस कारण उक्त तथ्यों से रंगमंच के संदर्भ में भी रंग शब्द का अर्थ स्पष्ट होता है। डॉ. अज्ञात ने लिखा है, "...रंग कहने मात्र से पूरे रंगमंच का बोध हो जाता है, अतः 'रंगमंच' में 'मंच' शब्द अनावश्यक-सा प्रतीत होता है।"[3] रंगमंच के लिए यह 'रंग' शब्द आधुनिक नहीं है लेकिन अर्थ विस्तार अवश्य हुआ है। परंतु मंच शब्द में एक विशेषता भी है, खासकर लोकनाटकों की इसलिए रंगमंच में मंच शब्द अनावश्यक नहीं है। हाँ रंग शब्द से नाट्य कला का अर्थ ध्वनित अवश्य होती है।

नाट्यशास्त्र के इतिहास में रंगशाला के लिए 'रंग' शब्द का अर्थ बहुत पुराना है और यह स्थान विशेष से संबन्धित है। आचार्य भरत ने भी रंग शब्द का प्रयोग किया है, उन्होने रंगशाला के लिए 'रंगमंडप, रंगपीठ, आदि शब्दों का प्रयोग किया है।[4] लेकिन यह रंगमंडप या रंगपीठ शब्द समय आदि की दृष्टि से विशेष अर्थों के ही द्योतक हैं रंगमंच के नहीं, रंगमंच के अर्थ में भरत ने 'नाट्य' शब्द का प्रयोग किया।

---

[1] रामचन्द्र वर्मा, सं. मानक हिन्दीकोश-चौथा खंड, पृ. 453

[2] हिन्दी शब्द सागर खंड चार, (सं.) सुंदरदास, पृ.869

[3] डॉ. अज्ञात, भारतीय रंगमंच का विवेचनात्मक इतिहास पृ. 28

[4] शर्मा, डॉ. विश्वनाथ. हिन्दी रंगमंच उद्भव और विकास, पृ. 2

अभिनवगुप्त ने भी 'रंग' शब्द का प्रयोग नाट्य-मंडप के अर्थ में किया।[1] मानक हिन्दी शब्दकोश में भी 'रंग' शब्द को इस तरह परिभाषित किया है, "मनोविनोद के लिए की जानेवाली क्रीड़ा, उससे प्राप्त होने वाला आनंद, नृत्य, गीत आदि का उत्सव और वह स्थान जहाँ अभिनय होता हो।"[2] यहाँ नाट्य कला आदि के अर्थ में रंग शब्द का अर्थ स्पष्ट होता है। इस आधुनिक शब्दकोश में रंगमंचीय और प्रदर्शनकारी कलाओं के अर्थों पर ज़ोर दिया गया है। इसी तरह हिन्दी शब्दसागर में लिखा है, "नृत्य, गीत, अभिनय और वह स्थान जहाँ नृत्य होता है।"[3] 'रंग' शब्द का प्रयोग उपसर्ग और प्रत्यय के रूप में भी होता है। नाटक कला अंतर-अनुशासन के तमाम शब्द 'रंग' शब्द के योग से बने हैं जैसे– रंगशिल्प, रंगदर्शन, रंगकर्मी, रंगभूमि, नटरंग आदि जिनका सीधा संबंध रंगमंच के व्यावहारिक और वैचारिक पक्ष से है।

इस तरह 'रंग' शब्द का प्रयोग हमारे लोक और शास्त्र दोनों में विभिन्न अर्थों को प्रकट करने लिए होता है। लोक से शास्त्रों तक में 'रंग' का एक अर्थ प्रदर्शनकारी कलाओं और खेल-तमाशा आदि से मनोरंजन की अनुभूति को प्रकट करता है। इसलिए 'रंग' शब्द एक समय विशेष में या फिर पर्याय के रूप में नाट्य कला के अर्थ में अवश्य बोला जाता रहा।

1.1.2 मंच: इसी तरह 'मंच' शब्द का शब्दकोशीय अर्थ अध्ययन करने पर जान पड़ता है कि मंच शब्द पुल्लिंग (सं. मंच (उच्च होना) + घञ) संज्ञा है, जिसके अर्थ हैं खाट, खटिया तथा सभा समितियों में ऊँचा बना हुआ मण्डप, जिस पर बैठ कर सर्व

---

[1] हिन्दी शब्द सागर खंड चार, (सं.) सुंदरदास, पृ.829

[2] रामचन्द्र वर्मा, सं. मानक हिन्दीकोश-चौथा खंड, पृ. 454

[3] हिन्दी शब्दसागर (स.) श्याम सुंदरदारदास बी. ए., पृ.

साधारण के सामने किसी प्रकार का कार्य किया जाता है।[1] वर्धा हिन्दी शब्दकोश से मंच का अर्थ और अधिक स्पष्ट होता है- "(सं.) [सं-पु.] ऊँचा बना हुआ स्थान; चबूतरा, भाषण स्थल, रंगमंच, खाट; खटिया; मचिया।"[2] स्पष्ट है कि मंच शब्द के विभन्न अर्थ हैं लेकिन नाट्यशास्त्र में मंच का एक विशेष अर्थ होता है। इस आधुनिक शब्दकोश में रंगमंच के पर्याय में मंच शब्द का प्रयोग किया गया। मंच शब्द रंगमंच का वह भौतिक अर्थ ही देता है जिस स्थान विशेष पर नाटक का प्रदर्शन होता है। मंच को अंग्रेजी शब्द 'स्टेज' के पर्याय के रूप में भी देखा जाता है। रामचंद्र वर्मा ने अपने ग्रंथ शब्दार्थ-दर्शन में मंच शब्द का अँग्रेजी पर्याय प्लेटफॉर्म लिखा है जो ईंटों आदि के पायों, खंभो, बाँसों आदि पर लकड़ी के तख्तों से पाटकर बनाया जाता है, जिसका उपयोग सभाओं के समय सभापति, वक्ता, विशिष्ट और सम्मानित व्यक्ति के बैठने लिए किया जाता हैं। उन्होंनें 'मंच' को लाक्षणिक रूप में राजनीतिक मंच या साहित्यिक मंच आदि का भी वाचक माना है।[3] यहाँ मंच का एक शब्दोशीय अर्थ दिया गया है, जो व्यापक भाव-क्षेत्र को समेटने में अक्षम जान पड़ता है। मंच शब्द से तमाम अर्थ प्रचलन में रहे हैं। भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में 'रंग पूजा' शब्द का प्रयोग 'मंच पूजा' के अर्थ में हुआ है।[4] इससे यह पता चलता है कि 'रंग' शब्द का एक भिन्न अर्थ 'मंच' भी प्रचलन में रहा है और मंच का अर्थ रंगभूमि से लिया जाता रहा। मंच से बना 'मंचन' शब्द का अर्थ मंच पर नाटक खेलने से है। यह मंच शब्द भी अन्य शब्दों की तरह गतिशील रहा है जिसने स्वयं में नए अर्थों को आत्मसात किया है।

---

[1] रामचन्द्र वर्मा, सं. मानक हिन्दीकोश-चौथा खंड, पृ. 459

[2] राम प्रकाश सक्सेना, (सं.) वर्धा हिन्दी शब्दकोश, सॉफ्टवेयर संस्करण

[3] रामचंद्र वर्मा, शब्दार्थ-दर्शन, पृ. 473

[4] शर्मा, डॉ. विश्वनाथ. हिन्दी रंगमंच उद्भव और विकास, पृ. 2

लोक-परंपरा में देखें तो 'मंच' शब्द के और भी अर्थ खुलते हैं। "...मंच शब्द के कई तद्भव रूप भी प्रचलित हैं, जैसे- माच, माचा, माची, मचान आदि। इसमें 'माच' शब्द बहुत महत्वपूर्ण है। मालवी में यह शब्द मंच बाँधने और उस पर अभिनीत किए जाने वाले 'ख्याल' (खेल) दोनों ही अर्थों में प्रयुक्त होता है।"[1] इस तथ्य से यह ज्ञात होता है कि मंच शब्द का प्रयोग खेल-प्रदर्शन और नाट्य प्रदर्शन के लिए भी लोक में प्रचलित हैं। यही कारण है कि लोक नाटकों में 'माच' जैसे लोकनाटक खेले जाते हैं जैसे- मालवी का माच लोकनाट्य। मंच शब्द से ही मंचन, मंचीय, मंचित आदि शब्दों का विकास रंगमंच के संदर्भ में हुआ है। भारतीय लोक नाट्य प्रदर्शन की परंपरागत शैलियों में इसी प्रकार अलग-अलग नाम है। इन सभी नाट्य शैलियों के लिए स्थानीय नाम का विशेषण लगाकर रंगमंच कहा जा सकता है।

इस प्रकार मंच का अर्थ भी नाट्य कला के संदर्भ में भी प्रचलित रहा। विशेषकर नाट्य कला के अभिनय स्थान के लिए 'मंच' शब्द का प्रयोग होता रहा। गाँवों में स्थान विशेष पर प्रस्तुति होने के कारण किन्हीं नाट्य शैलियों का नाम इस स्थान विशेष से भी जुड़ा रहा। जैसे मध्य प्रदेश माँच। 'मंच' शब्द स्वतंत्र रूप से रंगमंच के अभिनय क्षेत्र से संबधित रहा इस कारण इसक प्रयोग कई बार नाट्य के अर्थ में भी हुआ है।

1.1.3 रंगमंच की परिभाषा एवं स्वरूप: 'रंग' और मंच के योग से बना 'रंगमंच' शब्द आधुनिक नाट्य-कला के विकास का बोधक है। 'रंग' और 'मंच' में पर्याप्त भेद व साम्य होते हुए भी यह एक-दूसरे के पर्याय रहे हैं तथा इनके योग से बना 'रंगमंच' शब्द नाट्यकला अनुशासन की प्रमुख भूमिका में रहा है या कहें कि 'रंगमंच' शब्द आज नाट्यकला का पर्याय बन गया है। शब्दार्थगत दृष्टि से देखने पर पता चलता है कि

[1] श्याम परमार, लोकधर्मी नाट्य परंपरा, पृ. 28

रंगमंच शब्द (सं.) (सं-पु.) नाटक खेले जाने का स्थान; नाट्यशाला; (स्टेज), (ला-अ.) कोई ऐसा स्थान जिसे आधार बनाकर कोई काम किया जाए[1] के अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है। रंगमंच के संबंध में इस तरह के विचार रहे हैं जो रंगमंच को एक प्रेक्षाग्रह के भीतर मंच में या एक 'स्टेज' के रूप में ही परिभाषित करते हैं। डॉ. अज्ञात का मत है कि हिन्दी में रंगमंच शब्द का प्रयोग बंगला के अनुकरण पर हुआ।[2] यह रंगशाला और रंगमंडप के लिए व्यवहार में आया था। रामचन्द्र वर्मा के अनुसार रंगमंच "विशिष्ट रूप से ऐसे मंच का वाचक था जिस पर नाटकों के अभिनय, गीत, नृत्य आदि के कार्यक्रम जनसाधारण के सामने प्रस्तुत करते थे। आज भी यह शब्द मुख्य रूप से इसी अर्थ में प्रचलित है।"[3] हिन्दी में 'रंगमंच' के शब्दगत अर्थ की चर्चा अधिक रही जबकि जिस शब्द के पर्याय के रूप में रंगमच शब्द का प्रयोग हिन्दी में हुआ उसे बहुत दिनों तक सीमित अर्थों; प्रेक्षाग्रह के रूप में देखा जाता रहा। रामचंद्रा वर्मा ने रंगमंच का मतलब इसी सीमित अर्थ में लिया। रंगमंच शब्द 'थिएटर' के पर्याय के तौर पर प्रयोग में आया। लेकिन थिएटर आज सम्पूर्ण नाट्य-कला पर्याय है। डॉ. अमरनाथ रंगमंच को परिभाषित करते हुए लिखते हैं, "आज रंगमंच शब्द का अर्थ विस्तार हो गया है। ...आज थिएटर, 'स्टेज' और रंगमंच में बहुत कम अंतर रह गया, यदा-कदा एक दूसरे के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होते देखे जा सकते हैं।"[4] उपर्युक्त परिभाषा में ध्यान रखने वाली बात यह है कि थिएटर और रंगमंच सामान्यतः एक अर्थ में प्रयोग किए जाते हैं। इसी से रंगमंच का विशिष्ट अर्थ सामने आता है जो एक नाट्य-रूपक को ध्वनित करता है। लेकिन यहाँ रंगमंच के पर्याय के रूप में जो 'स्टेज' बताया गया है, वह विचारणीय

---

[1] राम प्रकाश सक्सेना, (सं.) वर्धा हिन्दी शब्दकोश, सॉफ्टवेयर संस्करण

[2] डॉ. अज्ञात, भारतीय रंगमंच का विवेचनात्मक इतिहास पृ. 28

[3] रामचंद्र वर्मा, शब्दार्थ-दर्शन, पृ. 474

[4] डॉ. अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृ. 288

है। इसमें 'स्टेज' और रंगमंच के अंतर को आज भी स्वीकार किया जाता है। अतः एक बारीक अंतर रंगमंच, थिएटर और नाट्य में विद्यमान है। 'स्टेज' रंगमंच का एक सीमित अनुवाद होगा। डॉ लक्ष्मीनारायण लाल के अनुसार, "रंगमंच बहुत बड़ा अर्थवान शब्द है जैसे कि 'थिएटर'। संस्कृति का 'नाट्य' शब्द उन सबसे बड़ा है।"[1] नाट्य शब्द में नृत्त, नृत्य और नाट्यं समाहित हैं, दूसरा रंगमंच में मंच का भ्रम रहता है इस कारण हो सकता लक्ष्मीनारायण लाल को नाट्य शब्द इन तीनों में अधिक बड़ा प्रतीत होता है। आज व्यवहार में रंगमंच और थिएटर पर्याय के रूप में जाने जाते हैं। 'नाट्य' उतना प्रचलित नही हो पाया है।

'रंगमंच' शब्द के इतिहास से पता चलता है कि कुछ विद्वानों ने 'स्टेज' के अर्थ में रंगमंच शब्द का प्रयोग किया। इसका अनुवाद अँग्रेजी शब्द थिएटर के अर्थबोध को अभिव्यक्त करने के लिए हुआ था। थिएटर आज नाट्य-रूपक के पर्याय के रूप में प्रचलित है। रंगमंच शब्द के इस व्यापक अर्थ की तरफ प्रारम्भ से विद्वानों का ध्यान जाता रहा, जैसे हरिभाऊ उपाध्याय ने एक लेख 'कुछ-विचार' में लिखा है, भारत में रंगमंच की जगह पहले नाट्य-गृह, नाट्य-शाला, आदि शब्दों का प्रयोग होता आ रहा है। नाटक, अभिनय, साज-सज्जा आदि को मिलाकर अब रंगमंच शब्द का प्रयोग होने लगा। यह शब्द थिएटर का अनुवाद है।[2] इसी तरह कुंवर चंद्रप्रकाश सिंह ने लिखा है कि "रंगमंच एक कलात्मक संस्था है। रंगमंच अभिनेता, मंचसज्जा, संगीत, प्रकाश तथा अन्य कलाओं का सम्मिश्रण होकर भी स्वयं एक स्वायत्त तथा मौलिक कला है,

[1] लक्ष्मीनारायण लाल, नाटक, रंगमंच और जनता, संस्कृति 24, वर्ष- 6 अंक- 4 पृ. 14

[2] हरिभाऊ उपाध्याय, कुछ विचार, अंक 6-7 पृ. 17.

जिसकी अपनी स्वतंत्र सत्ता है।"[1] उपर्युक्त परिभाषा में रंगमंच को स्वतंत्र विधा के रूप में परिचित कराया गया हैं जो स्वयं में स्वायत्त है।

रंगमंच का अर्थ जो विद्वान सिर्फ मंच तक सीमित रखते हैं उनकी प्रस्तुत परिभाषा खंडन करते हुए 'रंगमंच' एक व्यापक अर्थ प्रस्तुत करता है। यह अर्थ लोकनाट्य रूप के लिए उपयुक्त है लेकिन अगर नाट्य वाचिक है तो इसमें काव्य भी मिला दिया जाए। समान्यतः जिस मंच पर दर्शकों के सम्मुख नाटक का प्रदर्शन किया जाए उसे मंच (स्टेज) कहा जाना चाहिए, रंगमंच नहीं। लेकिन हिन्दी नाट्यालोचन में रंगमंच भी कहा गया है जो उचित नहीं जान पड़ता। रंगमंच शब्द नाट्यकला के आधुनिक युगबोध का शब्द है जिसमे प्रकाश-व्यवस्था और मंच पर साज-सज्जा के साथ विभिन्न प्रकार की तकनीक से लेकर विषय पक्ष के सम्पूर्ण क्रिया-भाव एवं उपादान शामिल हैं। जिसमें एक नाट्य पूर्ण अर्थ संप्रेक्षण के साथ दर्शकों के सम्मुख उपस्थित होता है। ऐसा कतई न सोच लिया जाए कि लोक नाटकों में प्रकाश व्यवस्था नहीं होती, परंपरागत प्रकाश व्यवस्था आवश्यकता अनुसार सभी लोक नाटकों पायी जाती है। जो विद्वान रंगमंच का अर्थ थिएटर से लेते हैं उन्हें यह समझना चाहिए कि जब हम 'थिएटर करना' कहते हैं तो उसका अर्थ नाटक खेलने से ही लिया जाता है। ऐसे ही जब हम कहते हैं कि हिन्दी रंगमंच की दीर्घ लोक परम्परा रही है तो उसका अर्थ सम्पूर्ण नाट्य-कला से होता है मंच या 'स्टेज'से नहीं।

निष्कर्षतः उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि आधुनिक हिन्दी नाट्यलोचन या प्रयोग में रंगमंच का अर्थ नाट्यकला के लिए ही विभिन्न अर्थों में लिया जाता रहा है। रंगमंच शब्द का प्रयोग अधिकतर मंच और उससे जुड़े कलात्मक संसाधनो के लिए होता रहा है। आज रंगमंच का अर्थ व्यापक अर्थों में सम्पूर्ण नाट्य-कला के पर्याय के

---

[1] कुंवर चंद्रप्रकाश सिंह. हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा पृ. 12

तौर पर प्रयोग होता है। रंगमंच थिएटर के अर्थ में आज प्रयोग किया जाता है जैसे जब हम बोलते हैं 'हिन्दी रंगमंच' या 'मराठी रंगमंच' तो उसका अर्थ उस भाषा में प्रदर्शित सम्पूर्ण नाट्य विधा से होता है।

रंगमंच का अर्थगत विस्तार कई रूपों में पाया जाता है। कुछ विद्वान इसे मंच के सिर्फ भौतिक उपादाओं से जोड़ते हैं तो कई विद्वान रंगमंच को उसके सम्पूर्ण अर्थ; नाट्यकला के रूप में। कुँवरजी अग्रवाल ने लिखा है, "माध्यम के रूप में रंगमंच का अर्थ अत्यंत विस्तृत है । इसमें नाटक के प्रस्तुतीकरण से संबंध रखनेवाले सभी तत्व सम्मिलित हैं जैसे अभिनेता, वेषभूषा, दृश्यबंध, संगीत, प्रकाश, मंचस्थापत्य तथा दर्शक।"[1] आगे वह रंगमंच की अपनी परिकल्पना इस प्रकार समझाते हैं –

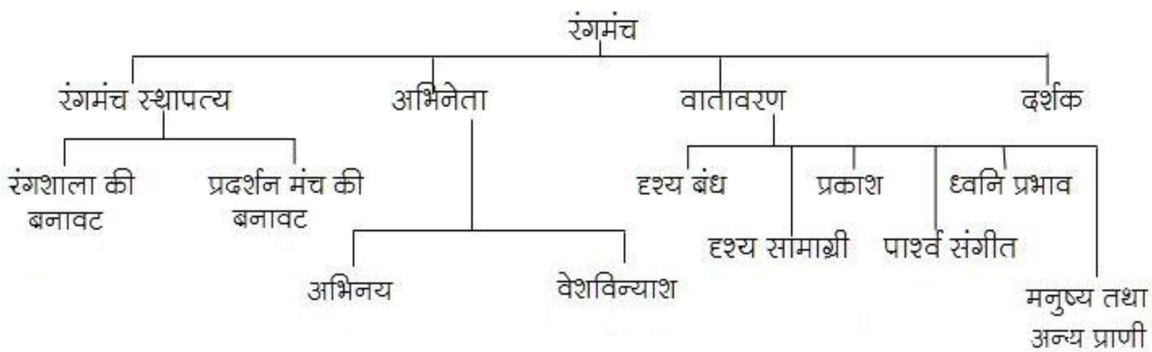

रंगमंच की यह स्थापना नाटक के 'प्रस्तुतीकरण से संबंध रखनेवाले' उपकरणों और प्रेक्षागृह से संबंध रखती हैं, जिसे रंगशाला या रंगस्थली आदि भी कहते हैं। लेखक ने एक वास्तुकार की तरह मंच की सजावट रेखांकन किया है। यह परिभाषा समुचित नहीं है, बावजूद रंगमंच का अर्थ विस्तार अवश्य प्रस्तुत करती है। जिसमें अभिनय, संगीत आदि तो हैं किन्तु काव्य, नाट्य-आलेख और मंचल शैली आदि रंगमंच के मुख्य बिन्दु

[1] कुंवरजी अग्रवाल, रंगमंच: एक माध्यम, पृ. 2-3

उपेक्षित रखे गए हैं, जो रंगमंच के प्राण तत्व हैं। इन्हीं से रंगमंच अपनी पूर्णता को प्रकट करता है।

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के इस विचार पर गौर करें तो रंगमंच का अर्थ और अधिक स्पष्ट होता है, "रंगमंच इतने तत्वों को मिलाकर सम्पूर्ण अर्थ देता है- इसमें सन्निहित है- नाटक, नाट्यकृति, निर्देशक, प्रस्तुतकर्ता, अभिनेता, रंगशिल्पी, दर्शक-समाज और रंग-भवन। किन्तु आज भारत-वर्ष में साधारणतः रंगमंच अपना सम्पूर्ण अर्थ खो बैठा है। आज रंगमंच की हर परिचर्चा में रंगमंच को अलग करके उसके साथ स्वतंत्र रूप से नाटक और दर्शक समाज रखा जाता है। अर्थात् आज रंगमंच का अर्थ केवल सीमित रूप से स्टेज-मंच मात्र ही ग्रहण किया जाता है। यानी नाटक जो रंगमंच की आत्मा है- वही रंगमंच से अलग कर लिया गया है।"[1] रंगमंच के लिए नाटक की लिखित कृति न भी हो, मौखिक काव्य तो आवश्यक ही है। उपर्युक्त उद्धरण से रंगमंच की एक व्यापक परिभाषा अवश्य प्रस्तुत होती है। रंगमंच से जो नाटक अथवा काव्य की जो उपेक्षा की जाती रही है लक्ष्मीनारायण लाल इसकोसंपूरकता प्रदान करतें हैं। डॉ. लक्ष्मीनारायण के विचारों पर आधारित डॉ. चंदूलाल दुबे[2] ने रंगमंच का निम्नांकित भाव-चित्र बनाया है-

[1] लक्ष्मीनारायण लाल, नाटक, रंगमंच और जनता, संस्कृति 24, वर्ष- 6 अंक- 4 पृ. 17

[2] चंदुलाल बोरा, रंगमंच : सैद्धान्तिक स्वरूप, हिन्दी नाटक और रंगमंच नारायण शर्मा (स.) राजकमल बोरा, पृ. 85

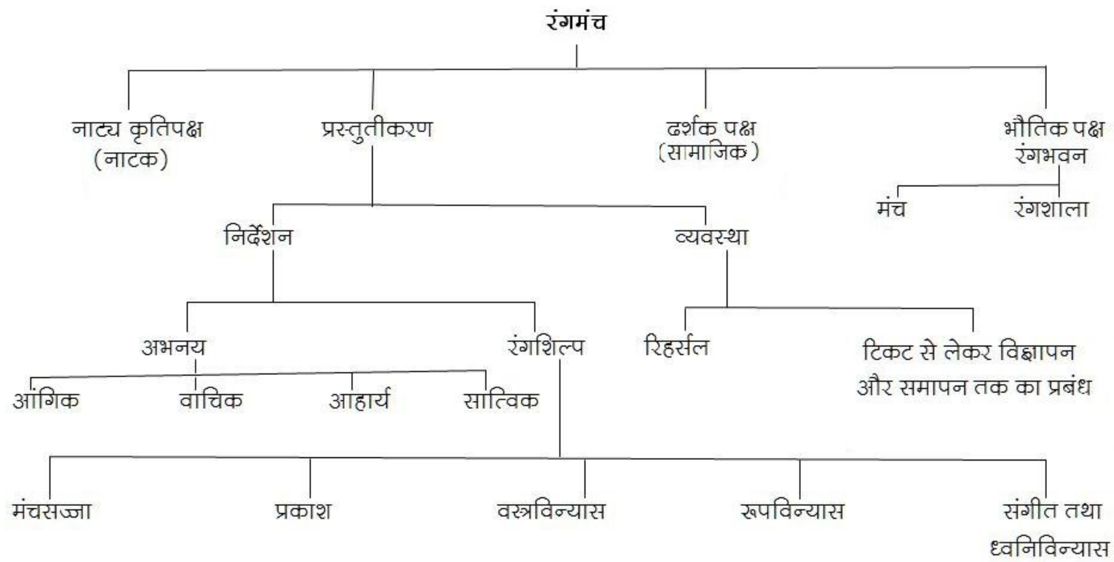

अब यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि रंगमंच इस अनुशासन के लिए एक बड़ा शब्द है, जिसमें सम्पूर्ण नाट्य-कला समाहित है। उपर्युक्त चित्र रंगमंच के स्वरूप को परिभाषित करते हुए इसके भागों-विभागों को रेखांकित करता है। आरेख में चित्रित सभी उपकरण रंगमंच को साकार करते हैं, इनमें से किसी एक के भी बिना रंगमंच अधूरा ही रहेगा। इसमें काव्य को समाहित किया गया है, रंगमंच शब्दार्थ से इसी की उपेक्षा अधिक रही । रंगमंच से अगर काव्य को हटा दिया जाएगा तो परंपरागत रंगमंच इसमें समाहित ही नही हो सकेगा जिसके लिए अलग से कोई लेखन कार्य नहीं होता। इसलिए डॉ. अज्ञात ने लिखा है कि “रंगस्थली या रंगशाला तो रंगमंच का निर्जीव स्थापत्य है, अभिनय, रंगदीपन, ध्वनि-संकेत आदि उसे मुखरित कर प्राणवान बना देते हैं, किन्तु नाटक के बिना अभिनयादि की कोई भी स्थिति नहीं हो सकती। रंगमंच एक साथ कला भी है और विज्ञान भी”[1] अज्ञात भी रंगमंच में काव्य को आवश्यक और महत्वपूर्ण उपादान माना है। रंगमंच में कला और तकनीक दोनों ही महत्वपूर्ण हैं। कला

[1] डॉ. अज्ञात, भारतीय रंगमंच का विवेचनात्मक इतिहास पृ. 28

को अपने सम्पूर्ण अर्थ-कौशल में स्पष्ट करने के लिए तकनीक का उपयोग होता है इसलिए रंगमंच एक प्रकार से विज्ञान भी है। विद्वानों ने इस बात पर भी ध्यान दिया कि रंगमंच दर्शक-समाज के लिए होता है। इसलिए सिर्फ भौतिक तकनीक ही रंगमंच के लिए आवश्यक नहीं है। एक रंगमंच काव्य-कला के उपयोग से पूर्ण होता है। यह काव्य सिर्फ लिखित या वाचिक शब्दों तक सीमित नहीं है, मूक रंगमंच का भी एक काव्य होता है जो उसकी अभिनय शैली से संप्रेषित होता है।

1.1.4 नाट्य और रंगमंच: रंगमंच के पर्याय के रूप में नाट्य शब्द का प्रयोग कुछ विद्वान उचित मानते हैं। इसका आधार भरतमुनि द्वारा प्रयुक्त शब्द 'नाट्य' है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में नाट्य-कला के विभिन्न चरणों, अंग-उपांगों पर व्यावहारिक एवं सैद्धांतिक विवेचना प्रस्तुत किया है। ऐतिहासिक विश्लेषण करें तो पता चलता है कि रंगमंच के पर्याय के रूप में भरतमुनि के यहाँ 'नाट्य' शब्द का प्रयोग मिलता है। इस नाट्य शब्द में काव्य, नृत्य, संगीत, शिल्प, अभिनय तथा अनेक प्रकार के सहायक उपादान आते हैं । इसमें 'नृत्य' तथा 'नृत' समाहित है। भरतमुनि ने उन प्रस्तुतियों को जो संगीत, नृत्य या अभिनय प्रधान हैं उन्हें 'नाट्य' के अंतर्गत रखा है। नाट्य में उन सभी रंगमंचीय कलाएँ समाहित करतें हैं जो एक नाटक की प्रस्तुति के लिए आवश्यक होती हैं।[1] नेमिचन्द्र जैन ने भी लिखा है कि "नाट्यकला सृजनात्मक अभिव्यक्ति का वह रूप है जिसमें संवाद मूलक आलेख या कथा को (जिसे हम नाटक कहते हैं) अभिनेताओं द्वारा रंग-शिल्पियों की सहायता से किसी रंगमंच पर दर्शक समूह से समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। रंगमंच रंगसंस्कृति का जीवित श्रोत है और इस प्रकार वह

---

[1] रामचन्द्र 'सरोज', प्रसाद की रंगदृष्टि और उनके नाटकों की प्रस्तुति, नाटक के सौ बरस, (सं.) हरीशचन्द्र अग्रवाल अजीत पुष्कल, पृ. 393

सक्रिय जीवन क्रम को प्रगट कर उसे सँवरता और निखरता है।"[1] रंगमंच प्रदर्शन-कला के 'नाट्य' को सारगर्भित किए हुए है। हिन्दी जगत में नाट्य शब्द रंगमंच के अर्थ में प्रचलित में नहीं हो पाया। इसलिए प्रस्तुत ग्रंथ में रंगमंच शब्द ही अधिक प्रयोग किया गया है। जबकि नाट्य शब्द लोक नाटकों की विशेषताओं के अधिक अनुकूल है इस कारण नाट्य शब्द रंगमंच की तुलना में उपयुक्त तो है लेकिन प्रचलित या रूढ़ नहीं।

इस तरह तमाम मत रहे हैं जो रंगमंच को रंगशाला और अभिनय में सहायक संसाधनों तक सीमित रखते हैं किन्तु रंगमंच शब्द का प्रयोग नाट्य-रूपक के अर्थ में होता है, यह भी उपर्युक्त अध्ययन से ज्ञात होता है। यह कुछ समय तक अँग्रेजी के 'स्टेज' के पर्याय रूप में प्रचलित अवश्य हुआ किन्तु बाद में अर्थ विस्तार करके नाट्य-शैली (थिएटर फोर्म) के अर्थ में रंगमंच शब्द का प्रयोग किया जाने लगा। डॉ. रघुवरदयाल वार्ष्णेय ने लिखा है कि "रंगमंच बाहर से कितना भी स्थूल दिखाई दे, उसका एक जटिल आंतरिक सूक्ष्म रूप भी होता है। बाह्य रूप उसी आंतरिक उपलब्धि का साधन मात्र है। इस दृष्टि से रंगमंच थिएटर के अधिक समीप है। थिएटर के अंतर्गत रंगभवन, प्रकाश, ध्वनि, आदि जैसे स्थूल उपादान तो आते ही हैं, नाट्यकृति, रंगकर्म, रूढ़ियाँ प्रदर्शन की भी गणना इसी के अनतर्गत की जाती है। प्रदर्शन के अंतर्गत भावबोध और सर्जनात्मक धरातल आते हैं। वस्तुतः थिएटर अपने आप में एक पूरी संस्था, एक पूरा अभियान है, जिसके कई आयाम और भावभूतियाँ हैं।"[2] उदाहरण के तौर पर जब हम बोलते हैं, हिन्दी रंगमंच या भारतीय रंगमंच या इसी तरह पश्चिमी रंगमंच तो इसका अर्थ उस मंच (स्टेज) विशेष से नहीं होता जिस पर कलाकार

[1] नेमिचन्द्र जैन , रंगदर्शन, पृ. 19

[2] डॉ. रघुवरदयाल वार्ष्णेय, रंगमंच की भूमिका और हिन्दी नाटक पृ. 23

अभिनय के साथ विभिन्न तरह के नाट्य-व्यापार करता हैं उसका संबंध नाट्य-रूपक या नाट्य-कला से होता है।

इस तरह रंगमंच शब्द का प्रयोग प्रायः दो अर्थों में होता रहा है एक अर्थ बहुत ही सीमित है जिसका तात्पर्य मंच और मंच से संबंध रखनेवाले भौतिक साधनों से है, दूसरा अर्थ नाट्य के अर्थ में व्यापक है। डॉ. रेखा गुप्ता ने लिखा है "'स्टेज'से रंगमंच के स्थूल दृश्य का ही बोध होता है। 'स्टेज'का यदि अर्थ विस्तार करें तो उसमें मंच, प्रकाश व्यवस्था, सज्जाग्रह, प्रेक्षाग्रह, अभिनेता आदि आ जाते हैं, किन्तु भाव-पक्ष से फिर-भी वह शून्यहीन रहता है, जबकि रंगमंच (थिएटर) में नाट्यकृति तथा रंगकर्म, भाव, व शिल्प सभी शामिल है।"[1] हिन्दी नाट्यालोचन में अधिकतर 'स्टेज'के अर्थ में रंगमंच शब्द प्रयोग किया जाता रहा जबकि रंगमंच शब्द व्यापक है इसमें नाट्य का अर्थ छुपा हुआ है। रंगमंच साज साजसज्जा और अभिनय की भौतिक जरूरतों के अतिरिक्त उसके संवेदनात्मक पक्ष के रसस्वादन तक समाहित है। लोकनाट्यों के संदर्भ में रंगमंच का यह अर्थ ही प्रासंगिक होगा। रामचन्द्र शुक्ल ने रंगमंच का महत्व बतलाते हुए एक कुंवर जी अग्रवाल की पुस्तक 'रंगमंच: एक अध्ययन' में लिखा है कि 'सामाजिक तथा धार्मिक उत्सवों तथा पर्वों पर लोक-मनोरंजन के लिए रंगमंच का प्रयोग बहुत हुआ है। शायद दूसरा कोई इससे अच्छा माध्यम नहीं था समूहिक मनोरंजन का।"[2] इस उद्धरण से स्पष्ट होता है कि 'रंगमंच' का प्रयोग किसी मंच या 'स्टेज' लिए न होकर नाट्य के लिए भी प्रयोग होता रहा है । इस कथन में 'रंगमच' शब्द का प्रयोग नाट्य विशेष के लिए हुआ है।

---

[1] डॉ. रेखा गुप्ता, हिन्दी रंगमंच विविध आयाम , पृ.

[2] कुंवरजी अग्रवाल, रंगमंच: एक माध्यम, पृ. 1

स्पष्ट होता है कि आज साहित्य और नाट्यकला अनुशासन में रंगमंच, मंच (स्टेज) या वह स्थान जिसपर दर्शकों के सामने अभिनय किया जाता है, के अतिरिक्त एक व्यापक अर्थ है जो सम्पूर्ण नाट्य-कला का द्योतक है। परंपराशील नाट्य के लिए रंगमंच आधुनिक नाट्यालोचना का शब्द है। इससे तात्पर्य एक नाट्य-शैली या विधा से है। यह रंगमंच आज नाट्य-शैली के अर्थ में समझा जाता है। इस तरह जब भी नौटंकी रंगमंच कहा जाए तो उसका अर्थ नाट्यकला की सम्पूर्ण नौटंकी या नौटंकी शैली से है।

1.2 रंगमंच का इतिहास

रंगमंच प्रत्येक देश-काल की रचनात्मक उपज है। माना जाता है जब से मानव जीवन का प्रारम्भ हुआ, तभी से रंगमंच की उत्पत्ति हुई होगी। विश्व के प्रत्येक देश में रंगमंच की परंपरा रही है। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल रंगमंच की इस परंपरा को गंभीरता से जानते हुए लिखते हैं कि "रंगमंच किसी भी देश और काल का क्यों न हो, वह एक परंपरा है, जीवित धारा है। उसके अर्थ, उसकी प्रकृति, उसके इष्ट धर्म को वैज्ञानिक रूप से, समूल रूप से देखना और जानना अनिवार्य है।"[1] भारत में रंगमंच का सुदीर्घ इतिहास भारतीय सभ्यता के प्राचीन प्रमाणों से ज्ञात होता है। वेद-शास्त्रों के तमाम सूत्रों में भी भारतीय नाट्यकला का जिक्र मिलता है। शास्त्रों में इसे दृश्य-काव्य के रूप में व्याख्यायित किया गया। शास्त्रों के समानान्तर नाट्य की लोक-परंपरा का भी संचार होता रहा है। नाट्य की लोक-परंपरा वेद-शास्त्रों से भी प्राचीन है । भारतीय संदर्भ में रंगमंच का इतिहास इसकी सभ्यता और संस्कृति से जुड़ा हुआ है इस कारण भारतीय रंगमंच संस्कृति और परंपरा में डूबा हुआ है। प्रारंभिक अवस्था में यह प्रदर्शन कथा-

[1] लक्ष्मीनारायण लाल, रगंमंच देखना और जानना, पृ. 12

गायन, गायन, नृत्य के रूप में समाहित था।[1] यह तब से संस्कृत साहित्य और लोक साहित्य में सारगर्भित होते हुए आज भी अपने परिवर्तित-विकसित रूप में वर्तमान है। प्रस्तुत शोध-प्रबंध का उद्देश्य रंगमंच का इतिहास लिखना नहीं है लेकिन रंगमंच की परंपरा पर एक ऐतिहासिक दृष्टि डाल लेना आवश्यक जान पड़ रहा है।

1.2.1 **प्रारम्भ:** भरतमुनि का 'नाट्यशास्त्र' नाट्य-कला पर अभी तक का प्राप्त पहला ग्रंथ है जिसमें नाटक से लेकर नाट्य-प्रदर्शन, आस्वादन, दर्शक आदि महत्वपूर्ण घटकों का अनुशीलन और विवेचन किया गया है। नाट्यशास्त्र से ज्ञात होता है कि भारत में नाट्यकला की परम्परा बहुत पुरानी है जो भरतमुनि के पहले से लोक में प्रचलित थी। इसके पीछे कई तर्क हैं, जिसमें एक तर्क यह है कि भरत ने परंपरा से प्राप्त नाट्य-कला को शास्त्रबद्ध किया।[2] (कुछ विद्वानों की मान्यता यह भी है कि भरत किसी एक व्यक्ति का नाम न होकर संग्रह करता या संपादक के लिए प्रयोग में आया शब्द है) दूसरा तर्क भारतेन्दु मिश्र के इस उद्धरण से स्पष्ट होता है जिसमें वे लिखते हैं कि भरत ने नाट्यशास्त्र की परिसमाप्ति पर भरतवाक्य में लिखा है- "*न प्रोक्तं यच्च लोकादनुकृतिकरणं तच्च कार्यं विधिज्ञैः*"[3] आर्थत् लोक परंपरा ही रंगमंच के लिए प्रबल प्रमाण है। भरत के विचार से जो कुछ इस ग्रंथ में समाहित नहीं हो पाया है उसे लोक परंपरा के अनुसार ग्रहण कर लेना चाहिए। अतः स्पष्ट होता है कि भारतीय रंगपरम्परा भरतमुनि के पूर्व से तो प्रचलित थी ही, रंगमंच की लोक परंपरा भी शास्त्रीय नाटकों के समांतर प्रचलन में थी, नहीं तो भरतमुनि नाट्य-विद्या को लोक से ग्रहण करने के लिए कतई न स्वीकार करते। भरत ने नाट्यशास्त्र में लोकधर्मी और नाट्य

---

[1] डॉ संचारी पाल, Wishberry, Team. www.wishberry.in. feb 22, 2016.

[2] सत्यदेव चौधरी, भारतीय काव्यशास्त्र, पृ. 02

[3] भारतेन्दुमिश्र. नाट्य प्रसंग. 27 मार्च 2009. http://natyaprasang.blogspot.com/2009/03/blog-post.html

धर्मी नाटकों का जिक्र किया है। इसमें परंपरागत लोक स्वभाव के अनुरूप नाटकों को लोकधर्मी और नाट्य के शास्त्रीय विधियों का पालन करने वाले नाटकों को लोक-नाट्यधर्मी कहा गया है।[1] यही तथ्य बच्चन सिंह हिन्दी नाटक का इतिहास लिखते हुए प्रस्तुत करते हैं। उन्होनें नाट्यशास्त्र से *"न वेद व्यवहारोयं संश्रावयः शूद्रजातिषु। तस्यात्सृजापरं वेदं पञ्चमं सर्ववर्णिकम्"* को उद्धृत करते हुए लिखा है कि "...नाटक अत्यंत लोकप्रिय साहित्य था। सभी वर्णों के स्त्री-पुरुष समान रूप से इसका रसास्वादन कर सकते थे।"[2] शूद्रजाति के रंगमंच से तात्पर्य लोक नाटकों से समझा जाना चाहिए। आज भी परंपराशील रंगमंच 'शूद्रजतियों' में पाए जाते हैं जो लोकप्रिय होकर प्रभुत्वशाली हो गए। नाट्य साहित्य का इतिहास लिखते हुए इतिहासकार ऋग्वेद में यम-यमी, पुरुरवा-उर्वशी, इंद्र-मारुत आदि के संवाद सूक्तों को प्रमाण मानकर नाट्य का इतिहास शुरू करते उन्हें दो बातें अवश्य सोचनी चाहिए। एक तो यह कि सिर्फ संवाद नाट्य-कला नहीं होती है, घटनाक्रम और संवाद साहित्य के भी तत्व रहे हैं। विधागत कलाओं में आपसी संबंध होते ही हैं। दूसरा शास्त्रों के बरअक्स सामान्य जन में भी रंगमंच प्रचलित था जिसकी तरफ स्वयं भरत भी इशारा करते हैं। इतिहासकारों ने नाट्य की लोक-परंपरा को छोड़कर शास्त्रीय नाटकों पर ध्यान केन्द्रित किया जबकि 'नाट्यशास्त्र' में इस परंपरा के प्रमाण तो मिलते ही हैं। तत्कालीन लोकनाट्य परंपरा के प्रमाणों का आज अकाल-सा इसी उपेक्षा भाव के कारण मौजूद है। रामायण, महाभारत, पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' और कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' आदि से भारतीय रंगमंच की लोकप्रियता के स्पष्ट संकेत मिलते हैं। तीसरी शताब्दी पूर्व आचार्य कौटिल्य के अर्थशास्त्र से विदित होता है कि नर्तक, गायक, नट, वादक, कुषीलव, सौमित्र तथा

[1] डॉ रामेश्वर नारायण, हिन्दी के विविध लोकनाट्य, हिन्दी नाटक के सौ वर्ष, (सं.) बादामसिंह रावत बालेंदु शेखर तिवारी, पृ. 150-156

[2] बच्चन सिंह, हिन्दी नाटक, पृ. 09

चारण, नाटकादि करके अपना जीवकोपार्जन करते थे।[1] हमें अपने समाज, साहित्य के ऐतिहासिक मूल्यांकन में यह स्मरण रखना होगा कि उसका प्रारंभिक प्रेरणास्रोत उपनिवेशवादी है। इन प्राच्य-विद्वानों से हम अधिक आगे नहीं बढ़ पाए हैं, उन्हीं के गढ़े इतिहास के ढाँचे में हम अपने साहित्य को परखते हैं। भारत में रंगमंच की शास्त्र से लेकर लोक तक सुदीर्घ परंपरा रही है लेकिन उसका व्यवस्थित इतिहास हमारे पास आज उपलब्ध नहीं है।

अभी तक प्राप्त प्रमाणों के आधार पर संस्कृत नाटकों का इतिहास भास से प्रारम्भ होता दिखाई देता है, जिनका जिक्र कालीदास अपने नाटकों में करते हैं। 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में टी. गणपति शास्त्री इनके नाटकों को प्रकाश में लाए। रंगमंच के इतिहास में इस समय-काल को 'क्लासिकल एरा' नाम से संबोधित किया जाता है। यह समय नाट्यशास्त्र के बाद से एक हज़ार ईस्वी तक माना जाता है, और इस अवधि में संस्कृत के शास्त्रीय नाटकों को ही शामिल किया जाता है। इसमें भास के बाद शूद्रक, कालीदास, अश्वघोष, हर्षवर्धन, भवभूति और विशाखदत्त आदि नाटककारों को रखा जाता है। बच्चन सिंह आदि कुछ विद्वान अश्वघोष से संस्कृत नाटक परंपरा का प्रारम्भ मानते हैं।[2] संस्कृत के यह नाटक धर्म और उनसे जुड़े संप्रदायों से प्रेरणा अधिक ग्रहण करते रहे इस कारण इनकी खोज में श्रम कम लगा। इतिहास के इस खंड को शास्त्रीय नाटकों की गणना व मूल्यांकन पर तो केन्द्रित किया गया लेकिन लोक-नाट्य परंपरा के तथ्यों को इस समय में खोजा नहीं जा सका। शूद्रक जिस परंपरा का निर्वहन करते हैं उससे अवश्य ही ज्ञात होता है कि उस समय भी जनसमान्य में नाट्य प्रदर्शन की प्रथा प्रचलित थी। तमाम लोकनृत्यों और लोकनाट्यों की परंपरा तत्कालीन समय

---

[1] डॉ. अज्ञात, भारतीय रंगमंच का विवेचनात्मक इतिहास, पृ. 112

[2] बच्चन सिंह, हिन्दी नाटक, पृ. 12

में ज्ञात होती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी संस्कृत के रूपकों में सट्टक और रासक को लोकनाट्य के रूप मानते हुए लिखा है कि “लोक में इन मनोरंजन विनोदों को देख कर संस्कृत के नाट्य-शास्त्रियों ने इन्हें (सट्टक एवं रासक) रूपकों में स्थान दिया है।”[1] इस लोकप्रिय नाट्य-परंपरा प्रमाणों को कई विद्वानों ने रेखांकित किया। डॉ. श्याम परमार ने भी “लोकधर्मी नाट्य-परंपरा' में इस तथ्य का जिक्र किया है कि संस्कृति नाटकों में लोक नाटकों के उदाहरण नहीं मिलते हैं लेकिन व्यायोग, प्रहसन, भाण, सट्टक आदि लोकनाट्य शैलियों के रूप हैं जो उस समय प्रचलन में थे।”[2] संस्कृतशास्त्र ने स्वयं को लोक से अलग करने के लिए इन नाट्यशैलियों को किसी न किसी रूप में विवेचना तो की लेकिन अपने शास्त्र में इन्हें निकृष्ट ही माना। इससे यह भी जान पड़ता है कि भारत में नाट्य परंपरा सुदीर्घ जनसामान्य की लोक और वर्ग विशेष की शास्त्रीय परंपरा रही। डॉ. अज्ञात नाट्य प्रदर्शन की लोक परंपरा के संबंध में अपनी पुस्तक 'भारतीय रंगमंच का विवेचनात्मक इतिहास' में लोक-समाज में उत्सवों, कला प्रदर्शन, सैनिक द्वंद्व-युद्ध के दौरान गायन, संगीत और नाट्य प्रदर्शन को स्वीकार किया है।[3] प्रमुख बात यह है कि ये प्रदर्शन शास्त्रीय न होकर लोक-समाज द्वारा प्रस्तुत किए जाते थे। इसे आधुनिक गिरिमिटिया मजदूरों के संदर्भ से प्रामाणिक माना जा सकता है कि भारतीय मजदूर अफ्रीका व अन्य देशों में जाकर भी अपनी प्रदर्शन और मनोरंजनपरक कलाओं को सँजोए रख सके। लोक विधाओं इस परंपरा का पालि, प्राकृत के साहित्य में संकेत मिलते हैं। यह संस्कृत नाटकों के प्रचलन के बाद, और अधिक चमक के

---

[1] हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य का आदिकाल, 'हिन्दी नाटक' (बच्चन सिंह) पृ. 15 से उद्धृत

[2] श्याम परमार, लोकधर्मी नाट्य-परंपरा, पृ. 7

[3] डॉ. अज्ञात, भारतीय रंगमंच का विवेचनात्मक इतिहास, पृ. 119

साथ मौखिक-काव्य, नृत्य और गायन शैली में नई संस्कृति व लोक-बोलियों के उद्भव के साथ विकसित और पल्लवित होती रही।

1.2.2 **मध्यकाल :** नाट्य-परंपरा के इतिहास में 'मध्यकाल' को लोक नाटकों का काल कहा जाता है। संस्कृत नाटकों की गति अवरुद्ध हो गई तब से इन्हीं ग्रामीण, मौखिक परंपरा के नाटकों की तरफ अधिक ध्यान दिया गया। जबकि लोक धर्मी नाट्य-परंपरा आदिम समय से किसी न किसी रूप में विद्यमान है। यह समय भारत में भक्ति-आंदोलन का समय था और क्षेत्रीय भाषाओं का उदय हो चुका था। जिसे रामविलास शर्मा सरीखे विद्वान लोकजागरण की संज्ञा देते हैं। यह लोक रंगमंच किसी सामंती या भद्र समाज की उपज न होकर जनमानस के कला-साधन थे। भक्तिकाल के समांतर या कहें साथ में इन लोक नाटकों का प्रचलन था। ये प्रत्येक स्थान एवं बोली में अपनी अलग शैलियों में प्रदर्शित किए जाते थे ।[1] नाटक व अन्य कलाओं का संबंध जनजागृति के आंदोलन से रहा है, इसका प्रमाण हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल और आधुनिक काल दोनों है। यह लोक रंगमंच प्रकृति से ही लोकधर्मी रहा है, लोक में प्रचलित धार्मिक, पौराणिक और लौकिक-सामाजिक विषयों का प्रदर्शन जनभाषाओं में होता रहा। लोक रंगमंच शैलियों का पार्थक्य रूप के साथ ही धार्मिक, पौराणिक और सामाजिक विषयों के आधार पर भी है। इन नाट्य शैलियों का प्रदर्शन 'इम्प्रोवाईजेशन' के जरिए होता है जिससे इनके कथ्य, शैली और समय में सामाजिक आवश्यकता परिवर्तन भी होता रहता है।

मध्यकाल में राजाश्रय से मुरझाई नाट्य-परंपरा की चमक लोक में अधिक प्रकाशित हुयी। लोकधर्मी नाट्य को किसी राजाश्रय की आवश्यकता भी नहीं होती।

[1] जावेद अख्तर खाँ, हिन्दी रंगमंच की लोकधारा, पृ. 28

भक्ति आंदोलन के साथ ही विभिन्न प्रकार की धार्मिक, पौराणिक और सामाजिक परंपरागत नाट्य शैलियाँ लोकप्रिय हुईं । राम और कृष्ण के जीवन पर आधारित लोकनाट्य इसी का परिणाम हैं। डॉ श्याम परमार ने लिखा है कि "भागवत के दशम् स्कन्द की कथाएँ अभिनय का सहारा पाकर लोक-जीवन की अभिव्यक्ति के स्पर्श से परम्परात्मक नाट्य-शैली के सूत्रपात की अधिकारिणी है। उधर राम के जीवन का अभिनय रामभक्ति शाखा की प्रेरणा से स्फुटित हुआ। इस प्रकार कालावधि में रासलीला और रामलीला दो लोकधर्मी नाट्य परम्पराएँ विकसित हुईं।"[1] उक्त उद्धरण से यह तो पता चलता है कि तत्कालीन समय में ये लोक नाट्य-शैलियाँ प्रचलित और भक्ति आंदोलन को प्रसारित कर रही थी लेकिन इस तरह की नाट्य शैलियों का भक्ति आंदोलन से पीछे भी जिक्र मिलता है। इस रूप में यह न भी रहीं हों, गायन व नृत्य रूप में लोक शैलियों के प्रदर्शन की प्रथा वर्तमान थीं। भक्ति और पौराणिक कथाओं का संगीत के साथ गायन की परंपरा प्राचीन समय से पायी जाती है। बंगाल में जात्रा का प्रदर्शन मध्ययुग में सामने आया। जयदेव के गीतगोबिन्द, चंडीदास और विद्यापति की पदावलियाँ जिनमें नाटकीय गुण विद्यमान थे, का मंचन जात्रा में खूब हुआ। जात्रा के संबंध में बलवंत गार्गी ने लिखा है, "पंद्रहवीं सदी में वैष्णव मत की लहर सारे भारत में फैल गई और इसने हिन्दू धर्म के जटिल रीति-रिवाजों को सरल रूप दिया। बंगाल में इसका विकास कृष्ण-भक्ति के नाचते-गाते जुलूसों के द्वारा हुआ"[2] जात्रा की घटनाएँ प्रारम्भ में कृष्ण की जीवन लीला पर आधारित थीं। इस उद्धरण से स्पष्ट होता है कि जात्रा प्रचलन पंद्रहवीं शताब्दी में उत्कर्ष पर था जिसमें 12 वीं और 13वीं शताब्दी के कवियों की कविताओं का प्रयोग होता था। उपर्युक्त उद्धरण में यह ध्यान रखने की बात

[1] श्याम परमार, लोकधर्मी नाट्य-परंपरा, पृ. 4

[2] बलवंत गार्गी, रंगमंच, पृ. 95

है कि कि यात्रा का अर्थ जुलूस भी होता है। अतः बंगला संस्कृति में मध्ययुगीन भक्ति के प्रसार में इस जात्रा की महत्वपूर्ण भूमिका रही। उधर मराष्ट्र में तमाशा, ललित, गोंधल, बहुरूपिया, दशावतार आदि लोक-प्रदर्शनकारी विधाएँ पायी जाती हैं। “संत ज्ञानेश्वर के समय मराठी नाटकों के विकास की परंपरा तमाशा, गोंधल, ललित और स्वांग जैसे लोक-प्रचलित मनोरंजन के साधनों से संबंध हो जाती है।”[1] तमिल देश में यक्षगान की परंपरा प्राचीन समय से आज भी लोकप्रिय है। इसी तरह उत्तर भारत में ख्याल, स्वांग, भगत और गुजरात-राजस्थान में भवाई, कठपुतली खेल आदि का प्रचलन मिलता है। बलवंत गार्गी भवाई का प्रारम्भ चौदहवीं शताब्दी में एक ब्राह्मण के ‘अछूत’ हो जाने से मानते हैं।[2] यह लोकनाट्य विधा मध्यकालीन सामंतों के दरबारों तक में पहुँची। मुग़लकाल आते आते इन लोक कलाओं में नए प्रयोग हुए फलस्वरूप नौटंकी आदि लोकनाट्यों का उदय हुआ। भवाई और ख्याल आदि का नए रूप में प्रदर्शन होने लगा। आधुनिक समय में भारतेन्दु हरिश्चंद्र की नाट्य-कला को देखकर लोक रंगमंच का अनुमान लगता है कि लोक में इस तरह की रंगमंच की तमाम शैलियाँ मौजूद रही हैं। यही लोकनाटक हिन्दी के अक्षय लोकनाटक हैं। जैसे हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ भक्तिकाल से माना जाता है वैसे ही हिन्दी रंगमंच का भी प्रारम्भ इस भक्तिकाल से माना जाना चाहिए।

1.2.3 **आधुनिक काल**: भारतीय रंगमंच की सरसब्ज परंपरा रही है, एक तरफ संस्कृत की शास्त्रीय परंपरा दूसरी तरफ लोक परंपरा। हिन्दी रंगमंच भारतीय रंग-परम्पराओं को आत्मसात किए हुए है । यह हिन्दी रंगमंच में निर्माण में भारतीय रंगमंच ने अपूर्व सहायता की है । इसी को रेखांकित करते हुए डॉ. अज्ञात लिखते हैं, “हिन्दी

[1] श्याम परमार, लोकधर्मी नाट्य-परंपरा, पृ. 60

[2] बलवंत गार्गी, रंगमंच, पृ. 96

रंगमंच केवल हिन्दी-भाषी प्रदेशों तक ही सीमित नहीं रहा, वरन् उसके प्रयोग एवं प्रसार में अन्य प्रदेशों का भी योगदान रहा है। हिन्दी रंगमंच के प्रादुर्भाव एवं विकास में अन्य भारतीय भाषाओं, विशेषकर बांग्ला, मराठी और गुजराती के रंगमंच ने और हिन्दी ने भी उक्त भाषाओं के रंगमंच के विकास में यत्किंचित् योग दिया है..."[1] इसलिए हिन्दी रंगमंच के अनुशीलन के लिए भारतीय रंगमंच पर एक दृष्टि डाल लेना उचित है। हिन्दी क्षेत्र का लोकप्रिय लोकनाटक नौटंकी को समझने के लिए हमें गुजरात के 'भवाई', राजस्थान के 'ख्याल', 'तुर्रा-कलगी' शैली, मध्यप्रदेश के 'माच' महाराष्ट्र के तमाशा को समझना अनिवार्य हो जाता है। इसी तरह रासलीला के लिए बंगाल की जात्रा आदि । हिन्दी रंगमंच की व्यवस्थित रंग-परम्परा में भारतीय नाट्य-तत्व समाहित हैं। आधुनिक समय में शिष्ट नाट्य परंपरा का जो प्रसार हो रहा है वह परंपराशील नाट्य-परंपरा के बिना अपूर्ण है। भारतेन्दु और उसके बाद नाटककार सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, हबीब तनवीर, महाराष्ट्र के विजय तेंदुलकर, कन्नड के गिरीश कर्नाड, कम्बार आदि ने इस परंपरा को पहचाना और इन कलाओं के साथ प्रयोग किया। किन्तु यह भी सत्य है कि इतिहास में लोक और शास्त्र की अलग परंपरा रही है लेकिन आज लोकतंत्र के समय में लोक महत्वपूर्ण हो जाता है और वह निर्णायक एवं समाज का कर्णधार होता है, रंगमंच सामाजिक अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त माध्यम होता है। इन कारणों से लोकरंगमंच का व्यवस्थित मूल्यांकन अति आवश्यक है ।

इस तरह रंगमंच का अभी तक इतिहास सिर्फ लिखित और शास्त्रीय नाटकों का इतिहास रहा है। भारतीय लोक जीवन की नाट्य-परंपरा को नाट्यशास्त्र के इतिहास से उपेक्षित रखा गया है। लोकनाटक हमारी सामाजिक संस्कृति का अभिन्न हिस्सा हैं। इनकी मौखिक और प्रदर्शन परंपरा से पता चलता है कि लोकनाटकों की उपस्थिति

[1] डॉ. अज्ञात, भारतीय रंगमंच का विवेचनात्मक इतिहास, पृ. 5

शिष्ट नाट्य साहित्य के समानान्तर ही प्रचलित रही जब शिष्ट नाटकों की गति ऐतिहासिक कारणों से अवरुद्ध हो गयी तो भारतीय समाज में ये लोक नाटक ध्रुव तारे की तरह अपनी चमक छोड़ने लगे। मध्यकाल से इन नाटकों के प्रमाण इस कारण से ही उपस्थित हैं। मध्यकाल से आज आधुनिक समय में भी लोक नाटक हमारी कलागत संस्कृति का अभिन्न हिस्सा बने हुए हैं।

1.3 **लोकनाटक**

लोकनाटक कथा, अभिनय, नृत्य-संगीत आदि से मिश्रित, पारंपरिक जनसमुदाय की सामाजिक अभिव्यक्ति और मनोरंजन का आदिम साधन है। लोकनाटक विधा के अनुशीलन से पता चलता है कि 'नाटक' शब्द में 'लोक' विशेषण के योग से इस शब्द की निर्मिति हुई है । यह लोक शब्द ही सम्पूर्ण लोक विधाओं में प्रधान है । इस कारण लोक शब्द पर एक दृष्टि डाल लेना उचित जान पड़ता है, तभी हम लोक नाटकों की आत्मा को पहचान सकते हैं । जनसमान्य के कला-साहित्य के लिए प्रयोग किया जाने वाला विशेषण 'लोक' आधुनिक शब्द है, जबकि लोक की कलागत विधाएँ मनुष्य के पुरातन-समय से आज भी वर्तमान हैं ।

1.3.1 फोक(Folk) : 'लोक' शब्द अँग्रेजी के Folk शब्द के पर्याय के तौर पर हिन्दी में प्रचलित हुआ। Folk शब्द Folklore विद्या के अध्ययन से प्रकाश में आया। 'फोकलोर' में असंस्कृत समाज (आभिजात्य और पांडित्य से रहित समाज) की प्रथाओं, रीति-रिवाजों, जादू-टोना, लोकप्रिय कलाएँ, मिथक, कथाएँ, गीत-संगीत और शिल्प कृषिजीवी जनता की भौतिक के साथ बौद्धिक संस्कृति आदि का अध्ययन और

संचयन किया जाता है।[1] Folk शब्द एंग्लो-सेक्सन शब्द Folc से निर्मित माना जाता है, जिसका प्रयोग सभ्यता से दूर रहने वाली असंस्कृत जाति या समूह के अर्थ में किया गया।[2] (Folc का यह अर्थ डॉ. बर्कर की परिभाषा के आधार पर है) इन्हीं कारणों से folk शब्द पर एक दृष्टि दृष्टि डाल लेना उचित जान पड़ता है। उपर्युक्त अर्थ की पुष्टि करते हुए डॉ. श्याम परमार ने लिखा है कि "'फोक'असंस्कृत और मूढ़ समाज अथवा जाति का द्योतक तक है, पर सर्व साधारण और राष्ट्र के सभी लोगों के लिए भी इसका प्रयोग होता है।"[3] उपर्युक्त उद्धरण का प्रथम अर्थ लोक का पर्याय नहीं बैठता । राष्ट्र के सभी लोगों के लिए 'फोक'और लोक दोनों उचित नही ठहरते। राष्ट्र में आधुनिक और आभिजात्य समाज भी बसता है जो लोक के दायरे में नहीं आता। इसलिए लोक शब्द 'फोक'के पर्याय के तौर पर प्रयोग तो किया जाता है, लेकिन समानार्थी नहीं है। इस कारण कुछ विद्वानों का ध्यान 'फोक'के अर्थ में 'जन' और 'ग्राम' शब्दों की तरफ भी गया किन्तु उस अर्थ का द्योतक न होने के कारण प्रचलन में न आ सका। 'जन' और 'लोक' में सप्राणत्व होते हुए भी लोक अधिक प्रचलन में रहा। लोक शब्द उस जन-समुदाय के अर्थ का द्योतक है जो शास्त्रीयता और पांडित्य से दूर परंपरा से प्राप्त चेतना से संचालित है।

1.3.2 **लोक:** भारतीय वाङ्मय में लोक शब्द विभिन्न अर्थों को ध्वनित करता है। वर्धा हिन्दी शब्दकोश ने लोक शब्द के इन अर्थों को लिया है- किसी देश या स्थान आदि का समाज, जनसामान्य; जनता; आवाम, विश्व का एक विभाग; भुवन, जैसे- पृथ्वीलोक, पाताललोक, स्थान; जगह आदि। लोक के पौराणिक अर्थ में, किसी देवता के रहने का

---

[1] देवेंद्र सत्यार्थी, बाजत आवे ढोल: एक लोकगीत अध्ययन, पृ. 9-11

[2] कृष्णदेव उपाध्याय, लोक संस्कृति की रूपरेखा, पृ. 4

[3] डॉ. श्याम परमार, भारतीय लोक-साहित्य, पृ. 12

विशिष्ट स्थान, जैसे- शिवलोक, विष्णुलोक आदि को बताया है।[1] इसी प्रकार 'हिन्दी विश्वकोश' में लोक शब्द का अर्थ प्रस्तुत करते हुए- "लोक्यते इति लोक-ञ्" लिखकर सात लोकों का जिक्र किया है और दूसरे अर्थो में लोक के लिए- जन, आदमी, स्थान, निवासस्थान, प्रदेश, समाज, प्राणी और यश कीर्ति शब्दों का प्रयोग किया।[2] इस अर्थ वैविध्य को देखकर लोक शब्द के प्राचीन और व्यापक होने के संकेत मिलते हैं।

लोक शब्द संस्कृत के 'लोक दर्शने' धातु से 'घञ्' प्रत्यय लग कर बना है, जिसका अर्थ देखने से है । बाद में लोक शब्द का अर्थ कोई विशेष स्थान जिसमें कुछ अलग प्रकार के प्राणी वास करते हैं के अर्थ में भी हुआ। इसी का लट् लकार के अन्य पुरुष के एक वचन का रूप 'लोकते' है।[3] लोक शब्द के प्रारम्भिक प्रमाण वेदों में दिखाई देते हैं, ऋग्वेद के 'पुरुषसूक्त' में लोक शब्द का उपयोग स्थान और जीव के अर्थ में किया गया है।[4] भारतीय पुराणों में भी विभिन्न लोकों की चर्चा की गयी है। अग्निपुराण में भी सात भुवन लोकों की चर्चा की गयी है। कहीं-कहीं चौदह लोकों का भी जिक्र है। भाषाशास्त्री पाणिनि ने 'लोक' और 'सर्वलोक' की चर्चा की है।*(लोक-सर्वलोकड्ञ्)* लेकिन उन्होने वेदों की सत्ता से अलग लोक की सत्ता स्वीकार की है।[5] भरतमुनि तो लोकधर्मी और नाट्यधर्मी नाट्य की चर्चा की जिससे लोक का अर्थ और अधुनातन स्पष्ट होता है। संस्कृत के नाटककार और कवि कालीदास ने भी अपने साहित्य में लोक एवं परलोक का वर्णन किया है।[6] मध्यकालीन साहित्य के पुरोधा पुरुष

---

[1] राम प्रकाश सक्सेना, (सं.) वर्धा हिन्दी शब्दकोश, सॉफ्टवेयर संस्करण

[2] श्री नगेंद्रनाथ वसु, हिन्दी विश्वकोश भाग-20, पृ-367

[3] कृष्णदेव उपाध्याय, लोक संस्कृति की रूपरेखा, पृ. 7

[4] ताराकान्त मिश्र, मैथिली लोक साहित्य का अध्ययन, पृ. 3

[5] ताराकान्त मिश्र, मैथिली लोक साहित्य का अध्ययन पृ. 4

[6] ताराकान्त मिश्र, मैथिली लोक साहित्य का अध्ययन, पृ. 5

तुलसीदास ने भी लोक और वेद की भिन्न-भिन्न परिस्थितियों का वर्णन किया है। *(लोकहूँ वेद सुसाहिब रीती, विनय सुनत पहिचानत प्रीती)* अतः यह तो स्पष्ट होता है भारतीय समाज में लोक और वेद को लेकर भिन्नता का भाव रहा है। लोक और वेद का मुहावरा हिन्दी समाज में आज भी प्रचलित है इससे ज्ञात होता है कि लोक शब्द का अर्थ वैदिक समय में भिन्न रह होगा, बदलती परिस्थितियों में शब्दों के अर्थ भी बदल जाते हैं इसलिए लोक शब्द के अर्थ में भी बदलाव आया।

इस अर्थ परिवर्तन के संदर्भ में 'हिन्दी साहित्य कोश' में लोक शब्द के प्रचलित दो अर्थों को विवेचित करते हुए लिखा है कि "दो अर्थ विशेष प्रचलित हैं। एक तो वह है जिससे इह लोक, परलोक अथवा त्रिलोक का ज्ञान होता है। वर्तमान प्रसंग में यह अर्थ अभिप्रेत नहीं। दूसरा अर्थ लोक का होता है जन-सामान्य में इसी का हिन्दी रूप लोग है। इसी अर्थ का वाचक 'लोक' शब्द साहित्य का विशेषण है।"[1] जिससे लोकसाहित्य अनुशासन-शब्द निर्मित हुआ है जिसके वर्गीकरण में लोकनाटक भी है। उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि लोक शब्द प्राचीन समय से प्रचलन में रहा है, जिसमें समय के साथ अर्थगत परिवर्तन भी होते रहे। आज लोक शब्द का प्रयोग जन-सामान्य और उससे संबन्धित विभिन्न संदर्भों में किया जाता है जो शास्त्रीय एवं सुसंस्कृत आभिजात्य से दूर बसता है। 'हिन्दी साहित्य कोश' में लोक शब्द को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "लोक मनुष्य-समाज का वह वर्ग है, जो आभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना और पांडित्य के अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है।"[2] यह परिभाषा लोक के उस अर्थ के आधार पर जान पड़ती है जिसमें कहा गया है कि जो वेद-शास्त्र में नहीं है वह लोक में है। आर्थत्

[1] हिन्दी साहित्य कोश, (सं.) धीरेंद्र वर्मा, पृ. 511

[2] वही, पृ. 511

वेद एक शास्त्रबद्ध है और लोक जनमानस की सिंचित परंपरा जिसका आधार एक समाज की चेतना और स्मृति है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लोक को व्यापक परिप्रेक्षय में देखते हुए लिखते हैं कि "लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम नहीं है, बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुयी समूची जनता है, जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोक नगर में परिष्कृत रुचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और आकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचिवाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारिता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं, उनको उत्पन्न करते हैं।"[1] द्विवेदी जी की उक्त परिभाषा 'लोकवार्ता' के अध्ययन में मील का पत्थर मानी जाती है। जिसका प्रमुख कारण लोक को वह उस सम्पूर्ण श्रमिक समाज से जोड़कर देखते हैं जो गाँवों और नगरों में चेतना के स्तर पर आभिजात्य संस्कारों से दूर पारंपरिक ज्ञान से संचालित होता है। लेकिन यह पारंपरिक जनमानस का श्रोत ग्रामीण कृषक समाज अथवा प्रकृति पर आश्रित वह जनसमुदाय ही है जो पारंपरिक जीवन-शैली यापन करता है। ऐसे में नगर में लोक उपलब्ध हो सकता लेकिन प्रवाहित नहीं हो सकता क्योंकि परंपरा की शृंखला टूट जाएगी।

लोक वह बृहत्तर जनसमुदाय है जो पृथ्वी पर वास करता, प्रकृति के सीधे संपर्क में रहता है और उसे अपनी माता मानता है जो आभिजात्य संस्कृति दूर चेतना के स्तर पर वह पुरातन संस्कृति से ऊर्जा ग्रहण करता है। डॉ. श्याम परमार भी लोक में श्रम और प्रकृति के महत्व को ध्यान में रखते हुए लिखते हैं कि "भारतीय किसान लोक का महाप्राण है।"[2] सिर्फ किसान को ही लोक का महाप्राण मानना लोक को

---

[1] हजारी प्रसाद द्विवेदी, जनपद वर्ष-1 अंक-1 , (सं.) कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. 10 से उद्धृत

[2] श्याम परमार, भारतीय लोक-साहित्य, पृ.11

सीमित कर देना है क्योंकि किसान के अतिरिक्त इस लोक का प्रणेता वह आदिम समाज भी है जो प्रकृति पर निर्भर जंगल की गोद में जीवन-यापन करता है और वह मजदूर भी जो श्रम में भी मनोरंजन के साधन एवं संस्कार खोज लेता है। कृष्णदेव उपाध्याय ने लोक के संबंध में लिखा है कि “जो लोग संस्कृत तथा परिष्कृत लोगों के प्रभाव से बाहर रहते हुए अपनी पुरातन परिस्थितियों में वर्तमान हैं उन्हें ही लोक कहा जाता है।”[1] स्पष्ट होता है कि पुरातन परम्पराओं, विचारों, साधनों से लैस श्रमशील जनसमुदाय ही लोक यथार्थ का प्रतिनिधित्व करता है। यही ‘लोक’ लोकसाहित्य, लोक कलाएँ और विभिन्न प्रकार की ज्ञान सम्पदाओं आदि का आधार है। लोकनाटक इसी परंपराशील जनसमुदाय की अभिव्यक्त और मनोरंजन का कलात्मक माध्यम है।

1.3.3 **लोकनाटक की परिभाषा**: लोकनाटक दृश्य-काव्य रूप में लोकसाहित्य का प्रदर्शनकारी अंग है। लोकसाहित्य को परिभाषित करते हुए डॉ. अमरनाथ ने लिखा है कि “लोक-साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है, जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढ़ी हो, पर जिसे सामान्य लोक-समूह अपना मानता है और जिसमें लोक की युग-युग की वाणी-साधना समाहित रहती है, जिसमें लोक मानस प्रतिबिम्बित रहता है, जिसका प्रत्येक शब्द, प्रत्येक स्वर, प्रत्येक लय और प्रत्येक लहजा लोक का अपना होता है और उसके लिए अत्यंत सहज और स्वाभाविक होता है।”[2] यह लोकसाहित्य की परिभाषा लोकनाटकों पर सौ-प्रतिशत सटीक बैठती है बस प्रदर्शनकारी तत्व; अभिनय, गीत-संगीत आदि लोकनाटक को कुछ अतिरिक्त रंजक बना देते हैं। भारतीय उपमहाद्वीप पर कई प्रकार की संस्कृतियाँ वास करती हैं। इनकी पूर्णतः लोकनाटकों के बिना अधूरी है। डॉ संचारी पाल ने लोकनाटकों संपूर्णता में परिभाषित किया है, वे लिखती हैं “A

[1] कृष्णदेव उपाध्याय, लोक संस्कृति की रूपरेखा, पृ. 10

[2] डॉ. अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृ. 318

fusion of music, dance, drama, stylized speech, and spectacle, folk theatre is a composite art form with deep roots in local identity and native culture. An important indigenous tool of interpersonal communication, this form of theater reflects the social-political realities of its time."[1] (*लोक नाटक संगीत, नृत्य, काव्य, शैलीबद्ध संवाद और खेल-तमाशा का एक समुच्चय है। यह लोक रंगमंच स्थानीय पहचान साथ अपनी मूल संस्कृति की गहरी जड़ों वाला एक समग्र कला रूप है। यह पारस्परिक संचार का एक महत्वपूर्ण स्वदेशी माध्यम है। साथ-ही रंगमंच का यह रूप अपने समय की सामाजिक-राजनीतिक वास्तविकताओं को दर्शाता है।*) लोक नाटकों को परिभाषित करते हुए 'वर्धा हिन्दी शब्दकोश' में लिखा है कि "लोकनाट्य लोक या सामान्य जन में प्रचलित परंपरागत और बिना पर्दे के नाटक जिनमें संकेतों और गीतों की प्रधानता होती है और वार्तालाप अधिकतर पद्य में होता है, जैसे- रामलीला, नौटंकी आदि।"[2] यह बात तो सच है कि लोकनाटक जनसामान्य में प्रचलित होता है और इसमें गीत-संगीत की प्रधानता के कारण बहुत कुछ संवाद पद्य में होते हैं लेकिन आज के समय में लोकनाटक की यह परिभाषा सटीक नहीं बैठती है क्योंकि रामलीला से लेकर नौटंकी एवं कई लोकनाटकों में पर्दे का प्रयोग किया जाता है। और पर्दा भी रस के उद्दीपन में सहायक होता है। गीत-संगीत लोकनाटकों का अभिन्न हिस्सा है। इसके भिन्न-भिन्न कारण हो सकते हैं। एक मत के अनुसार लोकनाट्य लोकनृत्य का विकसित रूप है क्योंकि नृत्य का इतिहास अधिक प्राचीन है और नृत्य लोक नाटकों का अभिन्न हिस्सा भी है । डॉ. बंशीराम शर्मा लोक नाट्य को परिभाषित करते हुए

[1] डॉ संचारी पाल, Wishberry, Team. www.wishberry.in. feb 22, 2016. https://www.wishberry.in

[2] राम प्रकाश सक्सेना, (सं.) वर्धा हिन्दी शब्दकोश, सॉफ्टवेयर संस्करण

शोध-ग्रंथ 'किन्नर लोकसाहित्य' में लिखते हैं, "लोक-नृत्य में लोक-मानस नाचता है परंतु लोक-नाट्य में उसकी अभिनय संबंधी कला अभिव्यक्ति अधिक मुखरित होती है...लोक-नृत्य लोक नाटकों का प्रधान अंग होता है, भले ही वह आधुनिक सुनियोजित न हो।"[1] इस तरह लोकनाटकों का लोक में पाए जाने वाले नृत्य से एक संबंध तो होता है, लेकिन कुछ लोक नाटकों में कोई पारंपरिक नृत्य न मिलकर संगीत और गीत की शैली अवश्य जड़ की तरह विद्यमान है। कुछ लोक नाटक ऐसे भी जिन्होनें अपनी नृत्य शैली स्वयं विकसित की।

रूपगत दृष्टि से लोक-कलाएँ बहुत लचीली होती हैं। इसकारण अपने समय की तकनीक और विज्ञान से अपने आकार में विकास करती हैं। जयदेव तनेजा ने लोकनाटकों को प्राचीन और समृद्ध बताते हुए भरतमुनि के द्वारा 'नाट्यशास्त्र' में लोक-मानस, लोक-धर्म की स्वीकार्यता को रेखांकित किया है। लोकनाटकों को परिभाषित करते हुए लिखा है, "लोक-नाटक सामान्य जन (कलाकार) द्वारा, सामान्य जन के लिए, अभिनय के माध्यम से प्रस्तुत, सामान्य जीवन की सहज, स्वाभाविक, अनौपचारिक, नृत्य, गीत और संगीतमय जीवन एवं लोक रंजक अभिव्यक्ति का नाम है।"[2] अतः लोक के मनोरंजन और सामाजिक अभिव्यक्ति का साधन लोकनाटक है जिसके कलाकार सामान्य जन होते हैं । यह लोकप्रदर्शन कला सम्पूर्ण भारत के हर छोर, गली-कूचों में जनमानस के निकट देखने को मिल जाएगी। जनसाधारण के मनोरंजन के साथ ही लोकनाटक समाज, धर्म और लोकरीति का प्रचार-प्रसार भी करते हैं । यही कारण है कि लोक-समाज से संबंधित उत्सवों, अवसरों तथा मांगलिक कार्यों के समय इनका प्रदर्शन देखने में मिल जाएगा है। लोकनाटक शास्त्रीय न होकर

[1] डॉ. बंशीराम शर्मा, किन्नर लोक साहित्य, पृष्ट 335

[2] जयदेव तनेजा, हिन्दी रंगकर्म, पृ. 126

उस समाज की समूहिक अभिव्यक्ति होते हैं डॉ.अज्ञात भी इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं, “लोकमंच (लोकनाटक) शास्त्र-अनुमोदित न होकर प्रदेश-विशेष की क्षमता, कला-दाक्षिण्य आदि पर आधारित स्वतः स्फूर्त अनगढ़ रंगमंच था, जिस पर लौकिकता की स्पष्ट छाप थी।”[1] इस रंगमंच में विशाल नाट्यमंडप एवं शास्त्रीय मर्यादा की आवश्यकता नहीं होती। यह रंगमंच अक्सर सार्वजनिक स्थल, मेला, मंदिर, मैदान आदि खुली जगहों में अस्थायी मंच आदि पर खेले जाते हैं। जगदीशचंद्र माथुर ने लोकनाटक के इन्हीं गुणों को ध्यान में रखते हुए लिखा है, “जो नाट्य राजा-महाराजाओं पर कम आश्रित, मंदिर एवं धार्मिक स्थानों पर अधिक, जो मेलों और उत्सवों में जन मनोरंजन करके पुष्ट होता हो, जो लक्षणकारों द्वारा स्थापित सिद्धांतों की उपेक्षा करता हो और जिसमें विभिन्न कलाओं का प्रयोग होता हो, उसे लोकनाट्य कहते हैं।”[2] यह माध्यम प्रत्येक सामाजिक समूह में लोकप्रिय हैं ।

1.3.4 इतिहास: विद्वानों का मत है कि लोकनाटकों का मूलाधार नृत्य है इसके प्रमाण स्वरूप जापान के ‘नोह-ड्रामा’ का उदाहरण दिया जाता है, जिसे ‘ता-माई’ नामक नृत्य से विकसित माना जाता है। भारत में रंगमंच के पर्याय के रूप में नाट्य शब्द का प्रयोग प्राचीन समय से होता आ रहा है और यह नाट्य, ‘नृत्य’ तथा ‘नृत’ से मिलकर निर्मित माना जाता है।[3] “नृत्त में केवल अंग-विक्षेप होता है और यह अंग-विक्षेप ताल और लय के आश्रित होता है। ... नृत्य में भावों का अनुकरण प्रधान होता है और आंगिक अभिनय पर बल दिया गया है।”[4] इस तरह लोकनाट्य विधा का विकास नृत्य

---

[1] डॉ. अज्ञात, भारतीय रंगमंच का विवेचनात्मक इतिहास, पृ. 110

[2] जगदीशचन्द्र माथुर, परंपराशील नाट्य , पृ. 39

[3] रामचन्द्र 'सरोज', प्रसाद की रंगदृष्टि और उनके नाटकों की प्रस्तुति, नाटक के सौ बरस (सं.) हरीशचन्द्र अग्रवाल अजीत पुष्कल, पृ. 393

[4] दशरथ ओझा, नाट्य-समीक्षा, पृ. 72

से होना स्वाभाविक भी है क्योंकि नृत्य मनुष्य की आदिम प्रवृति है। लोकनाटक मानव के साथ आदिम से किसी न किसी रूप में रहे हैं। लोक-मानस नृत्य के लिए आज भी उत्साहित रहता है।[1] अतः लोक नाटकों की उत्पत्ति नृत्य से मानने के बहुत से प्रमाण हैं। यही कारण है कि लोकनाटकों की परंपरा भरतमुनि के नाट्यशास्त्र लिखने के पूर्व से थी, जिसका जिक्र भरतमुनि ने अपने 'नाट्यशास्त्र' में स्वयं किया हैं। यह लोक-मनोरंजन बिखरी हुयी पद्धतियों सुधार और शास्त्रीय रूप नाट्यशास्त्र में शास्त्र-बद्ध किया होगा।[2] इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए जावेद अख्तर खाँ ने अपनी पुस्तक "हिन्दी रंगमंच की लोकधारा' में लिखा है कि 'दरअसल भरतमुनि ने पहले से चली आ रही लोकनाट्य-परंपरा को शास्त्रीय रूप दिया, जैसे पाणिनि लोकभाषा-आधारित लौकिक संस्कृत का व्याकरण रचते हैं।"[3] स्पष्ट होता है कि मनुष्य के साथ जैसे भाषा आदिम समय से उसके साथ है वैसे ही तमाम लोक कलाएँ भी। इनको भी शिष्टता का जामा पहना कर शास्त्रीय बनाया गया और लिपि बद्ध करने की परंपरा चली। इस तरह लोक नाटक लंबी यात्रा के साथ मध्यकाल में आधुनिक लोक बोलियों में ध्रुवतारा की तरह चमकते हुए दिखाई पड़ते हैं।

1.3.5 **लोक नाटकों का वर्गीकरण**: भारतीय सभ्यता और संस्कृति में लोकनाटकों की व्याप्ति ऐसी है कि भारत की प्रत्येक भाषा एवं संस्कृति में विभन्न प्रकार के लोकनाटकों की भरमार है। इन विधाओं के बिना लोक-मानव के मनोरंजन की कल्पना करना असंभव प्रतीत होता है। भारत की भिन्न-भिन्न देश-भाषाओं में प्रदर्शन-शैली और कथ्य को लेकर लोकनाटकों की अगाध परंपरा है जिसे विद्वानों नें विषय-वस्तु और

---

[1] बच्चन सिंह, हिन्दी नाटक पृ. 16

[2] श्याम परमार, लोकधर्मी नाट्य-परंपरा, पृ. 3

[3] जावेद अख़्तर खाँ, हिन्दी रंगमंच की लोकधारा, पृ. 24

प्रदर्शन शैली के आधार पर विभिन्न प्रकार से वर्गीकृत किया है। डॉ. श्याम परमार ने इन लोकनाटकों को दो श्रेणियों में विभाजित किया है; एक श्रेणी उनकी हैं जिसमें सामाजिक, राजनीतिक और अन्य लौकिक परिस्थितियों के विषय होते हैं और उपर्युक्त परिस्थितियों के निकृष्ट रूप की खिल्लियाँ उड़ाई जाती है। ऐसा हास्य, व्यंग्य से जुड़े प्रहसनों में पाया जाता है। इसी श्रेणी को पुन: दो भागों में विभाजित किया है, पहला लघु प्रहसन प्रकार के लोकनाटक तथा दूसरा मध्यरात्रि में प्रारम्भ होने वाले गीतिनाट्य।[1] इस पहली लघु प्रहसन शैली में विदेशिया, नटुआ, पंजाब का भांड आदि लोकनाटक तथा दूसरी शैली में नौटंकी, माच, आदि। डॉ.परमार ने दूसरी श्रेणी में उन लोकनाटकों को रखा है जिनकी कथावस्तु धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक है।[2] रासलीला, रामलीला आदि। लेकिन यह विभाजन कथ्य के आधार पर किया है जो लोकनाटकों के उत्कृष्ट विभाजन नहीं बन पाया है क्योंकि कथ्य की दृष्टि से देखें तो माच, नटुआ, नौटंकी आदि में भी धार्मिक पौराणिक विषयों का प्रदर्शन किया जाता है । इस साधारण रूप में लोक नाटकों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है ।

संगीत प्रधान लोकनाटक– देखा जाए तो सभी लोकनाटकों में संगीत की प्रधानता रहती है । लेकिन फिर भी कुछ लोकनाटक हैं जो संगीत के बिना अधूरे हैं जैसे, उत्तर प्रदेश की रासलीला, नौटंकी, राजस्थान का ख्याल, गुजरात का भवाई, मध्यप्रदेश का माच, बंगाल का जात्रा, छतीसगढ़ का पंडवानी, तमिलनाडु, आंध्र और तेलंगाना प्रदेश का यक्षगान आदि ।

हास्य प्रधान लोकनाटक- महाराष्ट्रा का तमाशा, पंजाब का भांड, आदि ।

नृत्य प्रधान लोकनाटक- रासलीला, आसाम का कीर्तनिया, आदि ।

[1] श्याम परमार, लोकधर्मी नाट्य-परंपरा, पृ.8

[2] श्याम परमार, लोकधर्मी नाट्य-परंपरा, पृ.8

वार्ता प्रधान लोकनाटक- हरियाणा का सांग,गुजरात का भवाई एवं गिद्दा आदि

इस तरह लोकनाटकों का वर्गीकरण किया जा सकता है किन्तु इस प्रकार के वर्गीकरण को उत्कृष्ट वर्गीकरण नहीं माना जाना चाहिए क्योंकि लोकनाटकों को जिन गुणों के आधार पर विभाजित किया है उसमें ऐसा नहीं है कि सिर्फ उसी गुण-विशेष की प्रधानता है। जैसे तमाशा, माच और नौटंकी हैं इसमें नृत्य भी है, संगीत भी है और वार्ता भी है। इसलिए लोकनाटक के लिए यह विभाजन बहुत उचित नहीं। लोक-समाज की मनोवृत्ति ही गीत-संगीत, नृत्य, हास्य, कथा-वार्ता सब में रमी है तो उनकी कलाओं में भी इन्हीं विशेषताओं की भरमार है । किसी किसी नाटक शैली के विषय पहले से निर्धारित होते है, जैसे रामलीला, रासलीला, जात्रा, यक्षगान आदि लेकिन कुछ के विषय समसामयिक भी होते है जैसे माच, नौटंकी, स्वांग, आदि । इन लोकनाटकों में कथा के अनुसार हास्य, पौराणिक, ऐतिहासिक होते हैं ।

1.3.6 **प्रमुख भारतीय लोक नाटक**: भारत में लोकनाटकों की विविधता कुछ इस तरह है । उत्तर भारत के लोक नाटकों में रामलीला, रासलीला, नौटंकी, स्वाँग, ख्याल, आदि लोकप्रिय कलाएँ हैं ।

रामलीला: जैसा कि नाम से ही जान पड़ता है इस धार्मिक लोकनाट्य का संबंध रामभक्ति परंपरा से है । कहा जाता है कि रामलीला की शुरुआत महाकवि तुलसीदास ने की थी जिसकी पुष्टि डॉ. श्याम परमार ने भी अपनी पुस्तक लोकधर्मी नाट्य परंपरा में की है ।[1] सन् 1621 ई में सर्वप्रथम अस्सीघाट पर नाटक के रूप में सन्त तुलसीदास जी ने रामचरित मानस के रूप में रामलीला का विमोचन किया। उसके बाद काशी नरेश ने रामनगर में रामलीला करवाने के लिये वृहद क्षेत्र में लंका, चित्रकूट, अरण्यम् वन की रूपरेखा बड़े मंच पर अंकित करवा कर रामलीला की

[1] श्याम परमार, लोकधर्मी नाट्य-परंपरा, पृ. 22

भव्य प्रस्तुति करवाई।[1] लेकिन तुलसीदास रामचरित मानस में जिस रामकाव्य परंपरा का जिक्र करते हैं उससे यही ज्ञात होता है रामकथा की कोई लोक-परंपरा अवश्य रही होगी । रामलीला का मंचन दशहरा के समय होता है। रामलीला में अभिनय करने वाले कलाकार सभी उम्र के और उनका ब्राह्मण होना अनिवार्य था लेकिन अभी अभिनय की यह रूढ़ि कहीं-कहीं टूट रही है । रंगमंचीय दृष्टि से रामलीला तीन प्रकार की हैं- सचल लीला, अचल लीला तथा स्टेज़ लीला ।

रासलीला: रासलीला ब्रज क्षेत्र का नृत्य-संगीत प्रधान लोकनाट्य है । इसका भी संबंध भक्ति आंदोलन की कृष्ण भक्ति से है। "रसानां समूहो रासः" के आधार पर डॉ. श्यामपरमार ने लिखा है कि रासलीला रसों का समूह है। उन्होनें रासलीला को परिभाषित करते हुए लिखा है, "रासलीला प्रचलित अर्थ में कृष्ण-चरित्र से संबन्धित नृत्य-अभिनयात्मक विविध लीलाओं का द्योतक शब्द है। नृत्य के साथ आंशिक रूप में संवादों एवं प्रधान रूप से संगीत का इसमें प्रसार है। अतएव रासलीला कतिपय नाटक के तत्वों से अनुप्राणित हो कर अपने लोकग्राही रूप में खुले रंगमच की नाट्य संपत्ति है।"[2] जगह-जगह रासलीलाओं का मंचन होता है, जिनमें सजे-धजे श्री कृष्ण को अलग-अलग रूप रखकर राधा के प्रति अपने प्रेम को व्यक्त करते दिखाया जाता है।

माच: मालवा का माच मालवा क्षेत्र का प्रतिनिधि लोकनाट्य माच है, जो अपनी सुदीर्घ परम्परा के साथ आज भी लोक मानस का प्रभावी मंच बना हुआ हैं। मालवा के लोकगीतों, लोक-कथाओं, लोक- नृत्य रूपों और लोक-संगीत के समावेश से समृद्ध माच सम्पूर्ण नाट्य की सम्भावनाओं को मूर्त करता है। माच शब्द संस्कृत भाषा के मंच का अपभ्रंश रूप है, जो रंगमंच के पर्याय रूप में स्थापित हो चुका है। माच अर्थ मंचित

[1] एम. पी. अस्थाना, हिन्दी नेस्टडॉटकाम . दिसंबर 25, 2002. http://hindinest.com

[2] श्याम परमार, लोकधर्मी नाट्य-परंपरा, पृ.3 व 8

और अभिनीत किए गए नाटक से है । श्याम परमार ने लिखा है कि लोकगीतों की हृदयस्पर्शी शब्द व्यंजना, मंत्रीय वैशिष्ट्य, रूढ़ अभिनयत्व, पद्यात्मक संवाद-योजना आदि तत्वों का समावेश माच लोकनाट्य उपलब्ध है । मिथिला के 'कीर्तनिया', राजस्थान के 'ख्याल', महाराष्ट्र के 'तमाशा' उत्तर प्रदेश की 'नौटंकी' गुजरात के 'भवाई' और ब्रज के 'रास' की भांति संगीत इसका प्राण है।[1]

भवाई: गुजरात का भवाई व्यावसायिक लोकनाट्य है इसे लोकनृत्य भी कहा जाता जिसे नाटक के रूप में खेला जाता है। भवाई लोकनाटक की अनेक विशेषताओं में प्रमुख विशेषता है कि "उसमें नृत्य-नाटिका के गुण तथा नृत्यों के साथ गीतों के प्रयोग की प्रवृत्ति का पूरा समावेश है।"[2] इस नाट्य में अभिनेता नृत्य करते हुए दर्शकों के समक्ष उपस्थित होते हैं। इसमें देशी ढाल के छंद, कुंडलियाँ तथा रेख़ता का प्रयोग भी कभी कभी होता है। भवाई को अन्य लोक-नाट्य विधाओं से अलग करता है इसका संगीत और काव्य का तालमेल। इसमें संगीत का प्राधान्य काव्य के साथ होता है। स्त्री पात्रों द्वारा लंबे और विलंबित लय में गीत कहे जाते हैं। इसमें नृत्य के अंतर्गत ताल का प्राधान्य होता है।[3] इसके जन्मदाता वाघाजी थे। इस लोकनाट्य में शारीरिक करतब दिखाने पर अधिक बल दिया जाता है। गुजरात और उससे संलग्न क्षेत्रो में भवाई जाति द्वारा यह नाट्य प्रस्तुत किया जाता है। राजस्थान के उदयपुर में भी यह लोक नाटक अधिक प्रचलित है। गुजरात और राजस्थान के अधिकतर लोकनाटकों का इतिहास भवाई नाट्य परंपरा से संबंध रखता है ।

तमाशा: महाराष्ट्र का लोकप्रिय लोकनाट्य है । तमाशा शब्द का अर्थ है- "मनोरंजन"। कुछ शोधकर्ताओं का मानना है कि संस्कृत के नाटक रूपों- प्रहसन और भाण से

---

[1] श्याम परमार, लोकधर्मी नाट्य-परंपरा, पृ.31

[2] वही पृ. 53

[3] बलवंत गार्गी, रंगमंच, पृ. 47

इसकी उत्पत्ति हुई है। इस लोक कला के माध्यम से महाभारत और रामायण जैसी पौराणिक कथाओं को सुनाया जाता है। इसमें ढोलकी, ड्रम, तुनतुनी, मंजीरा, डफ, हलगी, कड़े, हारमोनियम और घुँघरुओं का प्रयोग किया जाता है। तमाशा लोक नाटक का श्रृंगारिक रूप है, जो पश्चिम भारत के महाराष्ट्र राज्य में 16वीं शताब्दी में शुरू हुआ था। अन्य सभी भारतीय लोक नाटकों में प्रमुख भूमिका में प्राय: पुरुष होते हैं, लेकिन तमाशा में मुख्य भूमिका महिलाएँ निभाती हैं। 20वीं सदी में तमाशा व्यावसायिक रूप से बहुत सफल हुआ।

यक्षगान: यक्षगान पारम्परिक संगीत में संस्कृत के शास्त्रीय तत्वों को साथ लिए हुए, विषय में रामायण और महाभारत की कथाओं से युद्ध संबंधी विषयों को खेला जाता है। कर्नाटक और आंध्रप्रदेश में इसका अलग-अलग शैलियों में प्रदर्शन होता है। तेलंगाना में यक्षगान मडिगा दलित समुदाय इसका प्रदर्शन करता है। आज के समय में यक्षगान विप्रनारायण और राजगोपाल स्वामी के द्वारा कम्पोज़ किया हुआ खेला जाता है। इसमें अभिनय करने वाले कलाकारों को लोक-समाज धार्मिक-सम्मान देता है। यक्षगान के कलाकारों को चमकदार प्रभाव देने के लिए चमकदार परिधान और बड़ा मुकुट पहनाया जाता है। कलाकारों द्वारा पहने गए आभूषण नर्म लकड़ी से बनाए जाते हैं, जिसे शीशे के टुकड़ों और सुनहरे रंग के काग़ज़ के टुकड़ों से सजाया संवारा जाता है। इसके अतिरिक तमाम भारतीय लोक नाटक भारतीय समाज में पाए जाते हैं।

जात्रा: बंगाल जात्रा बंगाल का कृष्णभक्ति से संबन्धित है।

नौटंकी: नौटंकी कहानी, संगीत, अभिनय, और नृत्य का समन्वित रूप है। इसकी संगीत प्रधानता के कारण विद्वानों ने इसे गीतिनाट्य भी कहा। नौटंकी पश्चिम की 'ओपेरा' नाट्य विधा से अपनी गायकी के कारण मेल रखती है, इसमें पात्र अभिनय के साथ स्वयं गाते हैं। इसका प्रदर्शन क्षेत्र मुख्यतः उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, बिहार और

छतीसगढ़ है। यह अन्य लोकनाट्य विधाओं में सर्वाधिक लोकप्रिय गीतिनाट्य है। इसे कारण यूनेस्को ने इसी वर्ड हेरिटेज सूची में शामिल किया। नौटंकी की कहानी के विषय में डॉ सीताराम झा 'श्याम' ने लिखा है, "नौटंकियों में प्रेम से परिपूर्ण घटनाओं का का समावेश तो था ही, पीछे समाज के विशिष्ट वर्ग के लोगों की रुचियों का ध्यान कर धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक चरित्रों के आधार पर भी नौटंकी होने लगी जैसे- सत्यहरिश्चंद्र, मोरध्वज, पूरनमल आदि।"[1] नौटंकी ही नही यह अधिकतर सभी लोकनाट्यों की विशेषता है कि उनके विषय देश-काल और समाज के अनुसार परिवर्तित रहे हैं। नौटंकी का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन करना रहा है इसलिए यह धार्मिकता और पौराणिकता से दूर होती चली गयी, लेकिन सामाजिक उद्देश्य से प्रणयी, भक्त और वीर पुरुषों पर नौटंकी प्रचलित रही ।

कठपुतली नृत्य की राजस्थान में प्रस्तुत करने की परंपरा रही है। विद्वान इसकी प्राचीनता को नाट्यशास्त्र के पहले तक ले जाते हैं।

भड़ैत एक व्यवसायिक लोकमंच हैं जिसमें नकले अथवा स्वांग करके मनोरंजन करते हैं ।

जट-जटनी गीतों से भरा लघु प्रहसन है। यह मिथिला, उत्तर बिहार और भोजपुर में खेला जाता है ।

कामनकोट्टु दक्षिण भारत में पोंगल उत्सव के समय खेला जाता है। कामदेव और रति की कथा को आधार बनाकर इसका प्रदर्शन किया जाता है।

वीथि-नाटकम् यह तेलगु भाषी क्षेत्र में खेला जाता है कुछ विद्वान इसे यक्षगान का एक भेद मानते हैं। महाराष्ट्र भूमि में तमाशा के अतिरिक्त ललित, गोंधल, बहुरूपिया और

[1] डॉ सीताराम झा 'श्याम', हिन्दी नाटकसमाजशास्त्रीय अध्ययन :, पृ .82

दशावतार लोकनाटक प्रचलित हैं। उपर्युक्त लोकनाटक शैली अतिरिक्त भी लोकनाट्य हमारे समाज में व्याप्त हैं। जिनपर व्यापक दृष्टि से विचार नहीं किया गया है।

1.3.7 **लोक-नाटकों की विशेषताएँ**: लोकनाटकों में प्रयुक्त भाषा और संवाद काव्यमयी होते हैं जो संगीत के साथ संप्रेक्षित किए जाते हैं। काव्यमयी संवादों की परंपरा ऐतिहासिक है जो प्राचीन समय से आज भी इन नाटकों में विद्यमान है। इनमें संवाद छोटे और सरल होते हैं। किसी-किसी लोकनाटक का अपना छंद-विधान होता है। भाषा के स्तर पर देखें लोकनाटक अपनी लोकबोली में खेले जाते हैं जिस कारण भाषा में किसी भी प्रकार की कृत्रिमता नहीं पायी जाती। काव्यात्मक संवादों के बीच-बीच में गद्यपरक संवाद भी बोले जाते हैं। इस गद्य का प्रयोग पद्य में बोले गए संवादों की एक तरह पुनरावृति या फिर हास्य तथा कथा समझाने के लिए किया जाता है। इसमें गद्य भी एक तरह से पद्यात्मक होता है।

साज-संगीत लोकनाटकों का प्राण है। लोक-नाटकों के कलाकार इस साज-संगीत के साथ ही बिना संवाद संप्रेषित करते हैं। बिना संगीत के लोकनाटकों की कल्पना नहीं की जा सकती। क्षेत्र विशेष के लोक-नाटक उस क्षेत्र में अवश्य पाए जाते हैं। ढोलक, झाँझ, मजीरे, करताल, चिकारा, बांसुरी, हारमोनियम, पेपा, क्लार्नेट आदि वाद्य यंत्रों की आवश्यकता लोकनाटकों के संगीत योजना में होता है। प्रदर्शन की इन लोक शैलियों में संगीत आंचलिक शैली से प्रभावित होता है।

लोकनाटकों के कथानक धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक और लौकिक विषयों से जुड़े होते हैं। जैसे जात्रा और कीर्तनिया के कथानक कृष्ण-कथा से, यक्षगान रामायण और महाभारत की कथा पर आधारित होती है, माच, सांग, नौटंकी और तमाशा आदि के विषय ऐतिहासिक और लौकिक जीवन से होते हैं। संकलन-त्रय जैसी

किसी भी शास्त्रीयता की इन नाटकों में उपेक्षा मिलती है। लोकनाटकों के कथानक के शिल्प में शिष्ट नाटकों जैसा कसाव नही बन पाता, और लोक-मानस इसका ध्यान भी नहीं रखता। लोकसमाज धार्मिक-पौराणिक विषयों को भक्ति-भावना से देखता है और ऐतिहासिक विषयों को कुतूहल दृष्टि से इस कारण कथानक में कसावट की जरूरत भी नहीं पड़ती। डॉ. परमार ने कथानकों के दो रूपों की चर्चा की है, एक जो मुख्य कथा के सहारे देर रात तक चलते रहते हैं। इसमें छोटे-छोटे प्रसंगों के साथ कथा का विस्तार होता है। दूसरा प्रकार छोटे-छोटे प्रहसन जैसे लोक नाटकों का है।[1] इसमें लौकिक, मनोरंजन प्रधान अथवा सामाजिक विषय होते हैं। दशरथ ओझा ने लोकनाटकों के विषयों के संदर्भ में ठीक ही लिखा है कि “ग्रामीण नाट्यकारों ने प्रेम, आर्थिक संकट, वीरों के शौर्य, साहसियों के साहस, धार्मिकों की तपस्या, ढोंगियों के आडंबर, पतिवृता की विपत्ति, समाज की कुरीतियाँ, नवीन सभ्यता की त्रुटियाँ आदि को नाटक की कथावस्तु को आधार बनाया है।”[2]

लोक-समाज के कलाकार ही इन नाटकों में कोई न कोई भूमिका अदा करते हैं। भारत के अधिकतर लोकनाटकों में स्त्रियों का अभिनय पुरुष ही करते थे लेकिन पिछले कुछ समय से स्त्रियाँ भी अभिनय और नृत्य करने लगीं हैं। नौटंकी में अभिनय करने वाली प्रथम अभिनेत्री के नाम से गुलाबबाई को नवाजा जाता है। लोक कालाकारों के पास अभिनय का कोई शास्त्र नहीं होता है। वह मंचों पर नाटक देखते देखते या फिर गुरु परंपरा से अभिनय सीखते हैं। जरूरत पड़ने पर कोई भी दर्शक उठ कर अभिनय कर सकता है। इसलिए लोक नाटकों के अभिनय में यथार्थवादी दृष्टि की

[1] श्याम परमार, लोकधर्मी नाट्य-परंपरा, पृ.3
[2] दशरथ ओझा, नाट्य-समीक्षा पृ. 82

उम्मीद नही की जा सकती। लोक कलाकारों में लोक छंदों का हुनर होता है। इस गायन की कसौटी पर ही इनके अभिनय की परख होती है।

लोकनाटकों के अभिनय में पारंपरिक वस्त्रों का प्रयोग किया जाता है। अधिकतर वस्त्र चमक-धमक से भरपूर पहने जाते हैं। मुकुट और युद्ध के हथियार आदि का उपयोग धार्मिक, पौराणिक और ऐतिहासिक विषयों में मिलता है। खड़िया, कुमकुम, काजल, गेरू आदि इनके सजने-सवरने की प्रसाधन वस्तुएँ हैं अब तो जहाँ कहीं भी लोक कलाकार नाटकों का प्रदर्शन करते हैं वहाँ की महिलाओं से प्रसाधन की वस्तुए मांग लेते हैं। ये कलाकार कभी कभी मुख पर मुखौटा लगाकर विभिन्न प्रकार के पशुओं और पक्षियों का वेश धारण करते हैं। इंनका प्रदर्शन मुक्तांगन में अस्थायी रंगमंच पर होता है। नाटकों की प्रकृति के अनुसार मंदिर या किसी सार्वजनिक स्थल पर कपड़े से इसका रंगमंच तैयार किया जाता है। मंच के लिए प्रकाश की व्यवस्था अरंडी के तेल बनी मशालों या अब किसी भी प्रकार की मशालों से कर ली जाती है। इन लोकनाटकों का संबंध तर्क की अपेक्षा आध्यात्मिक भावना से अधिक होता है, सामाजिक आदर्श और अधिकार में आदर्श प्रमुखता से दिखाया जाता है। ये नाटक निम्न समझे जाने वाली जतियों के द्वारा अधिक खेले जाते हैं।

इस तरह भारतीय समाज में लोकनाटक सांस्कृतिक अस्मिता की तरह हैं। यह दीर्घ-परंपरा शिष्ट नाटकों के समानान्तर चलती रही। शिष्ट शास्त्रीय नाटकों की गति भी अवरुद्ध हुयी लेकिन लोकनाटकों का वेग मद्धम नहीं हुआ। हिन्दी ही नहीं सम्पूर्ण भारतीय रंगमंच की जब भी बात की जाएगी इन लोक शैलियों के बिना रंगमंच की चर्चा अधूरी ही रहेगी। इन्हीं लोक नाट्य शैलियों में उत्तर भारत का लोकप्रिय लोक रंगमंच नौटंकी है जो अपने प्रचन से हिन्दी रंगमंच को देता आया है।

निष्कर्ष: 'रंगमंच' शब्द और उसके व्यापक प्रयोग के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि 'रंगमंच' शब्द नाट्यकला के लिए नया है। आधुनिक नाट्य समीक्षकों ने इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 'स्टेज' के अर्थ में किया था। बाद में अर्थ व्यापकता के अनुसार नाट्य विधा के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किया जाने लगा। नाट्य और रंगमंच आज के प्रचलित अर्थ में एक दूसरे के पर्याय हैं। रंगमंच शब्द आज नाट्य समीक्षा में अधिक प्रयोग होता है और इसका अर्थ एक नाट्यकला अथवा शैली के अर्थ में लिया जाता है न कि 'स्टेज'या मंच के अर्थ में। जैसे, नौटंकी रंगमंच से आशय नौटंकी शैली की सम्पूर्ण नाट्यकला से है।

भारत में रंगमंच का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितनी कि यह सभ्यता। यह अलग बात है कि प्राचीन रंगमंच और उसके बाद के रंगमंच में परिवर्तन अवश्य होते रहे हैं। भरतमुनि का नाट्यशास्त्र इसका प्रमाण है कि लौकिक रंगमंच की परंपरा भरतमुनि के पहले से चली आ रही थी, उसको उनहोंनें शास्त्रबद्ध करके सैद्धांतिक आधार दिया। उसके बाद संस्कृत नाटकों के समांतर भी लोक रंगमंच की परंपरा रही है। मध्ययुग युग में लोक रंगमंच अपनी पूरी शक्ति के साथ दिखाई देता है। मध्यकाल के लौकिक रंगमंच में 'स्टेज'और शिल्पगत ढांचा बहुत ही सामान्य था। आधुनिकता के उदय के साथ इन लौकिक शैलियों में शिल्प और कथ्यगत बादलाव आए और नए कलेवर में इस रंगमंच का प्रवेश हुआ।

इस परंपरागत रंगमंच को विद्वानों ने लोक नाटकों की संज्ञा से नवाजा है। लोक एक पारिभाषिक शब्द है जो तमाम विवादों एवं मतभेदों के बावजूद भी अंग्रेजी के 'फोक' शब्द का पर्यायवाची है। 'फोक'शब्द के अंतर्गत आदिम समाज से चली आ रही परंपरागत कला एवं संस्कृति का अध्ययन किया जाता है जो तथाकथित सभ्य समाज

से दूर रही हैं। हिन्दी का लोक शब्द भी इसी अर्थ का पर्याय है, इसके अंतर्गत परंपरागत कला-साहित्य एवं संस्कृति का अध्ययन किया जाता है। लोक कलाएँ परंपरागत ज्ञान पर आधारित शास्त्रीय से दूर जनसाधारण के मनोरंजनएवं संस्कृति की वस्तु होतीं हैं। लोकनाटक इसी अर्थ में परंपरागत समाज के नाटक हैं जिनका प्रचलन हमारे लोक-समाज में परंपरागत ज्ञान एवं प्रशिक्षण के द्वारा जीवित रहा है। ये लोक नाटक भारत की समृद्ध संस्कृति के प्रमाण हैं, ये भारतीय समाज-संस्कृति के हर छोटे कोने से लेकर सम्पूर्ण भारतीय समाज में वर्तमान हैं। इस बहुभाषी और बहुसांस्कृतिक देश में नौटंकी, तमाशा, जात्रा, माच, ख्याल, यक्षगान आदि तमाम लोक नाटक उपलब्ध हैं। इस तरह इस लोक रंगमंच स्वरूप बहुत व्यापक है। हिन्दी प्रदेश का एक लोकप्रिय लोकनाट्य नौटंकी इसी लोक रंगमंच का उदाहरण है।

<u>अध्याय: दो</u>

नौटंकी की विधागत विवेचना

2.1. नौटंकी: नाम एवं नाट्यरूप

भारत प्रदर्शनकारी कलाओं के लिए एक अमीर देश है। इसमें प्रत्येक भूखंड और संस्कृति के अपने लोक नाटक हैं। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी और गुजरात से लेकर बंगाल तक यहाँ विभिन्न प्रकार के लोकनाटक मिलेंगें। इन्हीं सांस्कृतिक संपदाओं में एक लोकप्रिय लोकनाट्य विधा नौटंकी है। नौटंकी उत्तर भारत की लोकनाट्य विधाओं में सर्वाधिक लोकप्रिय है। यह अपनी प्रकृति में गीतिनाट्य, जनसाधारण के मनोरंजन का सबसे लोकप्रिय साधन रहा है। नौटंकी कहानी, अभिनय, संगीत और नृत्य आदि के समन्वय से प्रस्तुत की जाती है। जैसा कि पूर्व अध्याय में भी इसकी चर्चा की गई है। इसका प्रदर्शन मुख्यतः उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, बिहार और छतीसगढ़, मध्यप्रदेश आदि राज्यों में लोकप्रिय है। लोकनाटक नौटंकी क्या है ? इसकी विवेचना के लिए नौटंकी शब्द की पड़ताल करनी आवश्यक है।

2.1.1. नौटंकी शब्द की व्युत्पत्ति: नौटंकी' शब्द की व्युत्पत्ति कुछ विद्वानों ने 'नौ टंका' से मानतें हैं और कुछ विद्वान इसकी उत्पत्ति 'नट्' या 'नृत्' धातु से मानते हैं। शब्द व्युत्पत्ति की यह व्याख्या 'नाट्य' शब्द के विवेचन से मिलती है। 'नट्' से नाट्याभिनय का बोध होता है 'नृत्' से संगीत और नृत्य का। लेकिन इस अर्थ निर्मिति के पक्ष में कोई विशेष तथ्य तथा व्याकरण सम्मत नहीं है, शब्द की व्याख्या व्याकरणिक विवेचन है। दूसरा अर्थ जानकार 'नर्तकी' से 'नट्टकी' और फिर नौटंकी से

लगाते हैं।[1] यह अर्थ नौटंकी में गीत-संगीत और नृत्य की प्रधानता के कारण लगाया जाता है।

'टंका' शब्द से नौटंकी की उत्पत्ति का अर्थ रोचक और लोक कथात्मक है। टंका का अर्थ विद्वान और विदुषी अलग-अलग मानते हैं। एक मत यह है कि टंका भारत में चाँदी मापने का एक यंत्र हुआ करता था और यह चार ग्राम का होता है। इस प्रकार 'नौटंकी' का एक अर्थ 36 ग्राम की स्त्री से लिया जाता है जिसे फूल के बराबर या उससे भी हल्की स्त्री के अर्थ में लिया जाता है। माना जाता है कि मुल्तान में नौटंकी नाम की राजकुमारी थी, जो बहुत सुंदर सुकुमारी मानी जाती थी। इस कथा में इस रानी का वजन केवल नौ टंका माना जाता है जो ऐसा प्रतीत होता है कि यह धारणा सुंदरता के अर्थ में स्त्री को हल्का बोलने के चलन के कारण प्रचलित रहा होगा। 'मानक हिंदी कोश' में नौटंकी से पहले नौटंका शब्द का अर्थ दिया है- "तौल में बहुत हल्का।" बहुत ही सुकुमार अंगोंवाला या अंगोंवाली और नौटंका का स्त्रीलिंग नौटंकी बताया है। लेकिन यह सभी दंत कथाएँ जान पड़ती हैं। भारत के प्रत्येक लोक नाटक के उद्भव के पीछे कोई न कोई कथाएँ पाई जाती हैं। वैसे ही स्त्री 36 ग्राम की स्त्री 'नौटंकी' वाली कथा जान पड़ती है। 'नौटंकी' शब्द एक लोकनाटक के अर्थ में कैसे प्रयोग किया जाने लगा इस संदर्भ में माना जाता है कि 36 ग्राम की 'नौटंकी' नाम की एक रानी थी (?) जिन्हें पंजाब के राजा भूप सिंह के छोटे भाई लाड फूल सिंह ब्याह कर लाए थे। 19वीं सदी के अंत में जब रानी नौटंकी के किस्सों-कहानियों को लिखित रूप में दर्ज किया गया, तो 'रानी नौटंकी' या 'शाहजादी नौटंकी' नाम से कई नाटक खेले गये, जो बेहद लोकप्रिय हुए। इसी कथा पर आधारित खेले गए नाटक का नाम नौटंकी पड़ा। बाद में इसी शैली में अन्य कहानियाँ भी प्रस्तुत की गइ, जिससे नौटंकी

[1] डॉ. बिरेन्द्र कुमार चंद्रसखी, सांगीत के विविध आयाम, पृ. 45

रंगमंच लोकप्रिय हो चला। लेकिन यह नाम 'नौटंकी' इस विधा-प्रदर्शन के बहुत बाद में पड़ा।

कैथरिन हैन्सन[1] ने अपने शोध-ग्रंथ 'ग्राउंड फॉर प्ले: द नौटंकी थियेटर ऑफ नॉर्थ इंडिया' में नौटंकी शब्द का विस्तृत विवेचन इस तरह किया है- 'नौटंकी' शब्द हिन्दी शब्दकोशों में 1951 ई. के पहले नहीं मिलता है। हिन्दी में विभिन्न तरह के शब्दकोशों का निर्माण हो चुका था जिसमें नौटंकी शब्द का कहीं कोई जिक्र नहीं मिलता और उसके बाद के कुछ ग्रन्थों में भी। उनके ज्ञात श्रोतों में पहली बार रामचंद्र वर्मा ने प्रामाणिक हिन्दी कोश'(1951) में नौटंकी शब्द का अर्थ लिखा है- बृज क्षेत्र का एक लोकप्रिय लोकनाटक जिसमें चौबोला छंद गाकर नगाड़े की ताल पर अभिनय किया जाता है। यह परिभाषा छंद, गायकी और अभिनय को लेकर बहुत ही सीमित है। इस अर्थ से नौटंकी का परिचय मात्र होता है, वह भी एक सीमित अर्थ में। 'मानक हिंदी कोश' (1964) के तीसरे खण्ड में नौटंकी के बारे में एक संक्षिप्त और संतोषजनक जानकारी दी गई है। इस शब्दकोश के अनुसार नौटंकी लोकनाट्य की एक लोकप्रिय शैली है जो आम जनमानस के बीच प्रदर्शित की जाती है। समान्यतः इसका कथानक रोमांटिक एवं वीरतापरक होता है। इसके संवाद पद्यात्मक प्रश्नोत्तर मय होते हैं। इसमें संगीत की प्रधानता होती है और डुक्कड़ या नगाड़े पर चौबोला गाये जाते हैं। नौटंकी की सांगीतिक विशेषता में चौबोला छंद नक्कारे के साथ गाया जाता है।[2] इस शब्द कोश में नौटंकी से पहले नौटंका शब्द का अर्थ दिया गया है- 'तौल में बहुत हल्का' बहुत ही सुकुमार अंगोवाला और नौटंका का स्त्रीलिंग नौटंकी बताया गया है ।[3] इससे भी नौटंकी

[1] कैथरीन हैन्सन, ग्राउंड फॉर प्ले द नौटंकी थियेटर ऑफ नॉर्थ इंडिया, पृ. 12

[2] मानक हिन्दी कोश (खण्ड तीन) सं. रामचन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ. 331

[3] मानक हिन्दी कोश (खण्ड तीन) सं. रामचन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ. 331

नाम की राजकुमारी वाली कहानी का अर्थ लिया जाता होगा। वह कहानी सुंदर रानी, प्रेम और वीरता के लिए अधिक प्रचलित है। नौटंकी से संबन्धित अनुसंधान में कैथरिन हैन्सन की यह सबसे प्रामाणिक जानकारी मानी जाती है। इस संदर्भ में जब मैंने निरीक्षण किया तो पाया कि उपरोक्त शब्दकोश जिनका जिक्र कैथरीन हैन्सन ने 1951 से पूर्व किया है, उनमें तो नौटंकी शब्द को शामिल नहीं किया गया है। यहाँ तक कि 25 खंडों में प्रकाशित 'हिन्दी विश्वकोश' (सं. नगेंद्रनाथ वसु) में भी इस शब्द को स्थान नहीं दिया गया। इन शब्दकोशों के उपरांत जिन शब्दकोशों का निर्माण हुआ उनमें भी कुछ में नौटंकी शब्द का कोई जिक्र नहीं है। लेकिन कैथरिन ने 1958 में तैयार किए गए हिन्दी साहित्य कोश को उद्दृत नहीं किया है जबकि नौटंकी के पारिभाषिक ज्ञान से संबन्धित यह ग्रंथ समुचित जानकारी देता है।

अश्विनी कुमार पंकज की दृष्टि से डेखें तो पता चलता है कि नौटंकी और फूल सिंह की प्रेमकथा पर पहला संगीतप्रधान नाटक 'सांगीत रानी नौटंकी का' 1882 में लेखक खुशीराम ने प्रकाशित किया था।[1] यही से नौटंकी नाम का लोक नाटक प्रचलित हुआ। नौटंकी नाट्य में शृंगारप्रियता के कारण भी इसे नौटंकी नाम की रानी और उसकी सुंदरता से जोड़ना उचित जान पड़ता है। हिन्दी साहित्य कोशकार ने इस संदर्भ में लिखा है कि "नौटंकी मूलतः किसी प्रेम कहानी की केवल नौ टंक तौलवाली कोमलांगी नायिका होगी। वही संगीत-रूपक में प्रस्तुत की गयी और वह रूपक ऐसा प्रचलित हुआ कि अब प्रत्येक सांगीत-रूपक या स्वाँग ही नौटंकी कहा जाने लगा"[2] नौटंकी शब्द और उसके प्रचलन की उपरोक्त व्याख्या शत-प्रतिशत सत्य इसके कोई पुख्ता तथ्य नहीं हैं, यह विद्वानों अनुमान मात्र है। नौटंकी के बड़े-बड़े प्रयोगकर्ताओं ने

---

[1] अश्विनी कुमार पंकज, 36 ग्राम की स्त्री नौटंकी, मंडली (ब्लॉग)

[2] हिन्दी साहित्य कोश भाग -1 (सं.) धीरेंद्र वर्मा, पृ. 358

इसे 'सांगीत' ही कहा है। जयशंकर प्रसाद ने अपने निबंध 'रंगमंच' में नौटंकी को नाटक का अपभ्रंश रूप मानते हुए, इसे प्राचीन राग काव्य अथवा गीतिनाट्य की परंपरा का मानते हैं।[1] प्रसाद जी असल में नौटंकी को लोकधारा के प्रवाह के रूप में देखते हुए लोक विधा का एक पड़ाव मानते हैं इसलिए वह इस लोकनाट्य को प्राचीनता से जोड़ते हैं।

एक दूसरा मत नौटंकी को बुलंदियों पर पहुँचाने वाली लोकप्रिय कलाकार गुलाब बाई का है जो नौटंकी का अर्थ बताते हुए कहती हैं कि "नौटंकी उसे कहते हैं जिसमें नौ राग हों। इसमें लावणी, चौबोला, बहरे तबील, कव्वाली आदि है, सब राग हैं इसलिए यह नौटंकी है।"[2] नौटंकी कलाकार मधु (गुलाब बाई की पुत्री)'नौटंकी का अर्थ मेरे विचार से नौ तारीक से नक्कारे की टंकारों को आप जहाँ सुन सकते हैं, वह नौटंकी है।[3] स्पष्ट है कि गुलाब बाई नौटंकी का अर्थ उनके संगीत में राग और रसो से लेती हैं। खैर लोककलाकार के पास परिभाषित करने का एक जीवनानुभव होता है और ऐतिहासिक श्रोतों की जानकारी का उनके पास अभाव होता है।

लखनऊ संगीत-नाटक अकादमी से संबद्ध सिद्धेश्वर अवस्थी नौटंकी को आलेख की दृष्टि से देखते हुए लिखते हैं कि "मैं इसे आलेख के अर्थ में लेता हूँ। ये जो नौ रस हैं टंकी-टंकी के अर्थ रत्ती-रत्ती के अर्थ जिसे लोक विधा में पिरोया गया है। जिस आलेख में बंधा है जहाँ उसकी अनिवार्यता को समझा गया वह विधा है नौटंकी।"[4] यह नौटंकी आलेख को संगीत और रस की आवश्यकता और स्थान की कारीगिरी समझते हुए नौटंकी को परिभाषित करते हैं। सिद्धेश्वर अवस्थी भी नौटंकी शब्द को रस और

[1] जय शंकर प्रसाद, काला एवं अन्य निबंध , पृ. 57

[2] गुलाब बाई, एक थी गुलाब' डॉक्यूमेंट्री से उद्धृत 'इंदिरा गाँधी कला केंद्र' द्वारा निर्मित

[3] मधु, 'एक थी गुलाब' डॉक्यूमेंट्री से उद्धृत 'इंदिरा गाँधी कला केंद्र' द्वारा निर्मित

[4] सिद्धेश्वर अवस्थी, एक थी गुलाब' डॉक्यूमेंट्री से उद्धृत 'इंदिरा गाँधी कला केंद्र' द्वारा निर्मित

छंद के साथ जोड़कर देखते हैं। वह नौटंकी से संबन्धित प्रचलित कहानियों को नकारते हुए नौटंकी शब्द को उसके संगीत-गायन आदि से जोड़ते हैं। उन्होनें नौटंकी के 'नौ' शब्द पर ज़ोर देते हुए लिखा है कि "अगर नौ अंक को नब्बे तक पढ़िए तो उसकी संख्या का जोड़ नौ ही आता है । नौ रस हैं, नौ शक्तियाँ हैं, इस प्रकार नौ का यह अंक बड़ी दूर तक स्वतः व्याख्यायित हो जाता है। दर्शन में भी और तंत्र में भी। .... टंक शब्द चार माशे के तोल के बराबर होता है। तो नौटंकी के रचनाकारों को इससे एक संकेत मिलता है कि अगर कोई कथा लीजिए जो रस प्रधान है, तो उसकी रचना में छंद को एक अनुपात में लिखना पड़ता है। हर अंक में जैसे जैसे इसकी घटना बढ़ती जाती है, उसी प्रकार उसमें रस आते जाते हैं।"[1] स्पष्ट होता है कि नौटंकी में संगीत प्रधानता के कारण उसकी निर्माण की जो प्रक्रिया है उसके हिसाब से नौटंकी नाम पड़ा। यह प्रक्रिया छंद और रस की एक प्रणाली की तरफ संकेत करती है, जो नौटंकी में प्राण भरती है।

नौटंकी का उपर्युक्त उत्पत्ति-अर्थ व्याकरण सम्मत नहीं हैं। इसका कारण स्वयं नौटंकी शब्द है। एक लोक विधा में हमें व्याकरणिक शुद्धता की उम्मीद भी नहीं चाहिए। इस तरह नौटंकी शब्द कब और कैसे बना इसका कोई तथ्यात्मक उत्तर दे पाना कठिन है। इतना पता चलता है कि इस विधा का नौटंकी नाम बहुत बाद का है। इससे पहले इसके लेखों को सांगीत नाम से जाना जाता था। कानपुर शैली के लिए नौटंकी नाम अधिक प्रचलित हुआ। परंपरा से चली आ रही एक लोक विधा का अपने स्वरूप और प्रस्तुति के साथ नाम कब और क्यों परिवर्तित हुआ इसका प्रमाण उपर्युक्त तथ्य हैं जिनसे पता चलता है कि नयी परिस्थितियों में इस विधा ने आकार लिया और पल्लवित हुई। नौटंकी शब्द की उत्पत्ति के विभिन्न विचारों में दो विचार अधिक

[1] सिद्धेश्वर अवस्थी, एक शक्तिशाली विधा पर संकट, लोकनाट्य नौटंकी कुछ प्रश्न(सं.) रवीद्रनाथ बहोरे, पृ. 7

महत्वपूर्ण हैं, और ये दोनों ही भिन्न पक्ष को ध्यान में रखकर नौटंकी को परिभाषित करते हैं। एक नौटंकी शहजादी की जीवन-गाथा से संबन्धित और दूसरी नौटंकी में 'टंकी' को एक संगीत मापक यंत्र दृष्टि से आलेख के रचना-विधान से जुड़ा। नौटंकी शाहजादी के जीवन से जुड़ी मुझे कोई और लोक कथा अथवा गाथा नहीं मिलती है इसलिए मैं उसे नौटंकी रचना मात्र समझता हूँ। इस नौटंकी रचना से पूर्व 1878 में 'सांगीत पूरणमल का" का प्रकाशित हो चुकी थी। इससे ज्ञात होता है नौटंकी नाम कथा अगर इसके नाम का कारण बनती तो उसे मुद्रित रूप में आना चाहिए था। इन तमाम कारणों से नौटंकी शब्द इस विधा में संगीत के नाटकीयता और नाट्य के लौकिक रूप से जुड़ा हुआ प्रतीत होता है।

2.1.2. परिभाषा: उपर्युक्त नौटंकी के शब्दार्थ विवेचन से नौटंकी की पारिभाषिक अवधारणा भी स्पष्ट होती है। ये परिभाषाएँ नौटंकी को संगीत और उससे जुड़े उपादानों की दृष्टि से देखती हैं। "हिन्दी साहित्य कोश' में नौटंकी के स्वारूप को व्यापक अर्थ में समझाने का प्रयास किया है। इस साहित्य कोश में लिखा है कि "स्वाँग और 'लीला' के समान ही नौटंकी भी लोक-नाट्य का प्रमुख रूप है। इसका इतिहास मुग़लकाल से पहले का है। रास-लीलाओं के समान इसका रंगमंच भी अस्थिर, कामचलाऊ और निजी है।... इसकी कथाओं का संबंध पौराणिक आख्यानों से न होकर लौकिक वीर, प्रणयी, साहसिक, भक्त पुरुषों के कार्यों से होता है। उन्हीं का प्रदर्शन इसमें किया जाता है। पंजाब में गोपीचन्द, पूरन भक्त और हकीकत राय का सांगीत अधिक लोकप्रिय है।"[1]

नौटंकी को तमाम कलाकारों और विद्वानों ने अनेक तरीके से परिभाषित किया है जिसमें शब्द उत्पत्ति और नाट्य की प्रकृति को लेकर व्यक्त मत अनुभव और

[1] हिन्दी साहित्य कोश भाग -1 (सं.) धीरेंद्र वर्मा, पृ. 357-358

प्रस्तुति-प्रणाली पर आधारित हैं। नौटंकी कलाकार और नौटंकी के अध्यापक रामदयाल शर्मा के अनुसार स्वांग से अभिनय और वेषभूषा प्रयोग और भगत शैली का गायन मिलकर नौटंकी बना है।[1] यह परिभाषा निर्माण प्रक्रिया को तो समझती है लेकिन उसके स्वरूप और प्रकृति को समझाने का प्रयास नहीं करती। नौटंकी में गीत, संगीत और नृत्य की प्रधानता होती है। गुलाब बाई नौटंकी में नौ रागों को ध्यान में रखती हैं। कोलंबिया विश्वविद्यालय के प्रो. कैथ्रिन हैंसन ने कहा है कि "नौटंकी एक ऐसा संगीतमय रंगमंच है, जिसमें उच्चकोटि की छंद-बद्ध कविता का इस्तेमाल पूरी लय और तुक के साथ होता है।"[2] नौटंकी संगीत मय रंगमंच है लेकिन उसके विषय और प्रस्तुति विधान आदि को लेकर यह परिभाषा संकीर्ण हो जाती है। नौटंकी की भूमिका को रेखांकित करते हुए हीरामणि सिंह 'साथी' ने लिखा है कि "नौटंकी में मनोरंजन ही नहीं होता, समाज, धर्म तथा लोकरीति की पड़ताल भी होती है। नौटंकी का नक्करा एक साज होते हुए लोगों को जगाने एवं बेताब करके स्टेज तक पहुचाने का दूसरा नाम है। नौटंकी एक मंच नहीं है, जनमानस का मेला है जहाँ भीड़ ही नहीं जुटती बल्कि एक रागात्मक संगम भी होता है।"[3] यही कारण है कि अन्य लोक नाट्यों की तरह नौटंकी भी उत्तर भारतीय जनसाधारण के मनोरंजन का सबसे सुलभ साधन है।

नौटंकी समूहिक अभिव्यक्ति की उपज है। गायन, वादन, लेखन, और अभिनय करने वाले कलाकार एक समूह बना लेते हैं जिसे मंडली या कंपनी के नाम से जाना जाता है। नौटंकी रंगमंच इन मंडलियों के द्वारा ही विकसित-पल्लवित एवं आज वर्तमान हैं। इससे पहले स्वाँग, भगत और ख्याल बाजी के अखाड़े हुआ करते थे।

[1] रामदयाल शर्मा, 'एक थी गुलाब' डॉक्यूमेंट्री से उद्धृत 'इंदिरा गाँधी कला केंद्र द्वारा निर्मित

[2] कैथरीन हैन्सन,

[3] हीरामणि सिंह 'साथी', लोक धारा, पृ .97

उन्हीं के आधार पर नौटंकियों की भी मंडलियाँ बनी। नौटंकी की प्रमुख मंडलियों में 'नत्था चिंगारी मंडली' त्रिमोहन एंड चिम्मनलाल कंम्पनी' गुलाब थिएट्रिकल कंपनी' इसी तरह श्रीकृष्ण पहलवान की 'कृष्णा सांगीत कंपनी' था इनकी चार मंडलियाँ (शाखाएँ) बहुत लोकप्रिय थीं। इन मंडलियों में कंपनी शब्द पारसी रंगमंच के कारण जुड़ा।

2.1.3. सांगीत और नौटंकी: नौटंकी के लिए सांगीत शब्द का प्रयोग भी होता है। सांगीत शब्द 'स्वांग' और 'गीत' के योग से निर्मित है। जिसका अर्थ संगीत प्रधान 'ड्रामा' से है। कैथरिन हैन्सन सांगीत को 'म्यूजिकल ड्रामा' बोलते हुए उद्धृत किया है कि 'the origin of the word is disputed: it may be an adjectival from of the Sanskriti *sangita* (music) or a compound of *sang* (mime, drama) plus *git* (song)."[1] (शब्द [सांगीत] की उत्पत्ति विवादित है: यह संस्कृत शब्द 'संगीत' का विशेषण हो सकता है जो स्वाँग [माइम, ड्रामा] और गीत [गाना] का संयुक्त रूप है।) नौटंकी को प्रारम्भ में कानपुर शैली से पूर्व सांगीत नाम ही प्रचलित था। कानपुर शैली के प्रचलन के नौटंकी का प्रयोग अधिक होने लगा।

नौटंकी से सांगीत शब्द अधिक पुराना है विशेषकर हाथरस शैली के कलाकार सांगीत शब्द का प्रयोग करते हैं। इसीलिए कानपुर शैली की नौटंकी में भी सांगीत शब्द का प्रयोग होता रहा लेकिन नौटंकी के जैसा प्रसिद्ध नहीं हो पाया। हाथरस शैली में सांगीत शब्द का प्रचलन आलेख के अर्थ में हुआ था। सुरेश सलिल ने लिखा है कि "स्वांग-आलेखों को विधा के बतौर 'सांगीत' सबसे पहले हाथरस में ही कहा गया। बाद में

---

[1] (पुनरुद्धृत) Kathryn hansen, Ground for play the nautanki theater of north india, P. 87

कानपुर नौटंकी ने भी अपने यहाँ सांगीत शब्द का प्रचलन जारी रखा।"[1] नौटंकी आलेख इसके संगीत के आधार पर लिखे जाते थे। सांगीत को परिभाषित करते हुए वीरेन्द्र कुमार चन्द्रसखी ने लिखा है "पं. नथाराम शर्मा गौड़ ने स्वांग को एक अलग नाम सांगीत दिया, जो तकनीकी रूप से सटीक ही है। क्योंकि 'सांगीत' दो शब्दों के योग से मिलकर बना है। जिनमें स्वाँग (Drama), गीत (song) है, अतः यह शब्द आँग्ला भाषा 'Opera' के बहुत निकट है। जो संरचनात्मक ढांचा Opera का होता है ठीक उसी प्रकार 'सांगीत' (नौटंकी) के संरचनात्मक ढाँचे का निर्माण किया जाता है। जिसमें नाट्य, कथानक, नृत्य, गीत और वादन यह पाँच अंग आवश्यक माने जाते हैं।"[2] इस तरह नौटंकी और संगीत एक ही विधा के दो नाम है। सांगीत नाम इसकी संगीत प्रधानता के कारण पड़ा और नौटंकी शब्द कानपुर शैली के द्वारा प्रचलित हुआ। राम नारायण अग्रवाल ने इस संदर्भ में सही ही लिखा है कि "कारण यह है कि नौटंकी का गढ़ कानपुर है, इसलिए पूर्वी उत्तर प्रदेश में जनता कानपुर के प्रभाव से सांगीत को लोक नौटंकी नाम से जानते हैं। ... नौटंकी सांगीत परंपरा की सबसे अधिक अर्वाचीन कड़ी है। इसके नाम में कोई प्राचीनता ढुढ़ना व्यर्थ है, क्योंकि 'नौटंकी' शब्द किसी शब्दकोश तक में उपलब्ध नहीं होता। यह शब्द एकदम नया है।"[3]

2.1.4. स्वाँग,भगत, ख्याल और नौटंकी: यह सभी लोक में प्रदर्शित की जाने वाली कलाएँ हैं। स्वाँग, ख्याल और भगत भी मध्यकालीन प्रदर्शनकारी कलाओं में विशिष्ट स्थान रखतीं थी। स्वाँग के 16वीं सदी में प्रदर्शित होने का प्रमाण मिलते हैं और भगत के उससे कुछ बाद में।[4] भगत का ब्रज तथा हरियाणा पश्चिमी उत्तर प्रदेश में नौटंकी

[1] सुरेश सलिल, उत्तर प्रदेश की लोकनाट्य परंपरा और नौटंकी, पृ. 18
[2] बिरेन्द्र कुमार चंद्रसखी, सांगीत के विविध आयाम, पृ. 44
[3] राम नारायण अग्रवाल, सांगीत एक लोक नाट्य परंपरा, पृ. 125
[4] कृष्णनारायण कक्कड़, नौटंकी विधा:एक प्रारूप और कुछ प्रश्न, लोकनाट्य नौटंकी कुछ प्रश्न(सं.) रवीद्रनाथ बहोरे, पृ. 2

जैसा ही प्रदर्शन हुआ करता था। 'आइन-ए-अकबरी' से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समय में स्वाँग, तमाशा, ख्याल, रामलीला आदि कलाओं में भाग लेने वालों को 'भगतबाज' कहकर पुकारा जाता था।[1] हो सकता है कि ये भी लोक नाटक शैलियाँ रही हो या हो सकता जैसा कि हिन्दी साहित्य कोश में भी लिखा गया कि "नौटंकी, भगत, स्वाँग प्रायः पर्यायवाची हैं।"[2] इस कोश में भगत शब्द का अर्थ भक्ति-भाव से लिया गया है और बताया है कि प्रारम्भ में यह नाट्य विधा भक्ति का प्रदर्शन करती होगी लेकिन अब केवल भक्ति के नाम पर मंगलाचरण बचा है। स्वाँग का धार्मिकता से कोई संबंध नहीं रहता है लेकिन भगत और स्वाँग मूलतः संगीत रूपक हैं और इनके गायन का मुख्य छंद 'चौबोला है। इन प्रदर्शन शैलियों में शृंगार एवं वीरता प्रधान कथाओं को दिखाने का चलन चल पड़ा जिसे बाद में नौटंकी कहा जाने लगा।[3] यह समय राज-दरबारों का था जिसमें शृंगार प्रधान साहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा जा रहा था। ऐसे में लोक कलाओं का भी इससे प्रभावित होना स्वाभाविक है। नौटंकी शृंगार और प्रेमकथाओं से सम्बंधित है यह तो पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है। नारायण भक्त ने लिखा है कि 'संगीत प्रधान लोकनाट्य नौटंकी सदियों तक उत्तर भारत में प्रचलित स्वांग और भगत का मिश्रित रूप है। नौटंकी 'स्वांग' और 'भगत' में इस प्रकार घुलमिल गई है कि इसे दोनों से अलग नहीं किया जा सकता।[4] इस तरह शृंगार और वीरता के वर्णन से भगत, स्वाँग आदि अपना वरण्य-विषय नए रूप में परिवर्तित कर लिया लेकिन इसमें पारम्परिक स्वांग भगत आदि की संगीत-शैली का संबंध बना रहा, फलस्वरूप नौटंकी नाम की नई विधा का जन्म हुआ।

---

[1] डॉ. बिरेन्द्र कुमार चंद्रसखी, सांगीत के विविध आयाम, पृ. 42

[2] हिन्दी साहित्य कोश भाग -1 (सं.) धीरेंद्र वर्मा, पृ. 358

[3] हिन्दी साहित्य कोश भाग -1 (सं.) धीरेंद्र वर्मा, पृ. 358

[4] नारायण भक्त, मंच से उजड़ी मन में बसीः नौटंकी, अभिव्यक्ति हिन्दी (वेब)

ख्याल राजस्थान, गुजरात आदि स्थानों की प्रदर्शनकारी गायकी है। नौटंकी पर इसका प्रभाव देखा जा सकता है। नौटंकी की गायकी और छंद विधान में ख्याल शैली का स्पष्ट प्रभाव है। कृष्णनारायण कक्कड़ के अनुसार "नौटंकी में जिन छंदों का हम प्रयोग करते हैं, वो सब हमारे ख्याल युग की देन है। हमारे यहाँ लावनी, दौड़, लंगड़ी इत्यादि जो छंद आपको मिलेगें, वे सब हमारे ख्यालबाजों की देन हैं। बाद में इसमें से कुछ छंदों का प्रयोग करके उन्हें एक कथा में पिरोया और रस व उद्दीपन के लिए कुछ रागों का प्रयोग किया।"[1] शब्द-प्रयोग की ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो पता चलता है कि इस नाट्य-विधा के लिए नौटंकी शब्द का प्रयोग बहुत बाद में प्रारम्भ हुआ। पंडित नत्थाराम शर्मा गौड़ ने अपने नाट्य प्रदर्शनों और उनके आलेखों के लिए नौटंकी शब्द का प्रयोग नहीं किया उन्होनें 'सांगीत' शब्द का प्रयोग किया। नौटंकी नाट्य-विधा के प्रचलन के बहुत बाद में इसका नाम नौटंकी पड़ा और इस शब्द का अधिक प्रयोग कानपुर शैली के कलाकारों द्वारा प्रचलित हुआ।

2.1.5. पारसी थियेटर और नौटंकी: मंच की साज-सज्जा, तकनीक पारसी रंगमंच से भी प्रभावित रही। पारसी रंगमंच का प्रारम्भ 1766 ई. में बंबई में हुआ था, इस समय पूरे भारत में लोक नाटकों का स्वर्ण युग जैसा था। नौटंकी (स्वाँग, सांगीत) परंपरा इस समय प्रचलन में थी। इस कारण दोनों का एक दूसरे से प्रभावित होना स्वाभाविक है। लोक नाट्य किसी लोकप्रिय चीज से परहेज नहीं करती वही नौटंकी ने भी किया। आज नौटंकी की किसी भी प्रस्तुति में आपको पारसी रंगमंच का प्रभाव दिख जाएगा। पारसी रंगमंच की चमक-दमक, प्रकाश व्यवस्था, दृश्य बदलने के साथ पीछे के पर्दा का बदलना और विभिन्न प्रकार के पर्दों का प्रयोग और पारसी रंगमंच की व्यवस्था आदि नौटंकी में आई। लेकिन यह भी सच है कि नौटंकी से पारसी रंगमंच ने

[1] कृष्णनारायण कक्कड़, नौटंकी विधा: एक प्रारूप और कुछ प्रश्न, लोकनाट्य नौटंकी कुछ प्रश्न(सं.) रवीद्रनाथ बहोरे, पृ. 2

बहुत कुछ ग्रहण किया है। यहाँ तक कि कथा, गीत-संगीत आदि पारसी रंगमंच ने नौटंकी से लिआ। रामनरायण अग्रवाल ने लिखा है कि “पारसी रंगमंच ने अपने उदय और विकास काल में पहले स्वयं सांगीत परंपरा से प्रेरणा प्राप्त की थी। उसका उदय सांगीत की कथाओं के आधार पर हुआ था।”[1] इस तरह नौटंकी और पारसी थिएटर ने कला और तकनीक में परस्पर आदान-प्रदान किया। पारसी रंगमंच का एक वर्ग का मनोरंजन था और आर्थिक संपन्नता में नौटंकी से समृद्ध था जबकि नौटंकी लोक-जनमानस का मनोरंजन रहा है। इस कारण से पारसी रंगमंच की चमक-धमक से नौटंकी अधिक प्रभावित रही हैं। कानपुर शैली की नौटंकी मंडलियाँ अधिक व्यावसायिक रही हैं इस कारण से उन मंडलियों ने पारसी रंगमंच के तत्व अधिक आत्मसात किया।

2.2 नौटंकी का इतिहास: ऐतिहासिक रूप से किसी भी लोक विधा की तथ्यात्मक जानकारी देना आसान नहीं है। लोक विधाओं का इतिहास परम्परा या मौखिक श्रोतों से पता चलता है और मौखिक परंपरा में बदलाव स्वाभाविक हैं। नौटंकी रंगमंच के उद्भव का सही समय और स्थान क्या है ? इसके बारे में कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता। कुछ विद्वान इसे भरतमुनि के नाट्य रूपकों में ‘भाण’ और ‘सट्टक’ की परम्परा का मानते हैं। भरतमुनि अपने नाट्यशास्त्र में जिस सट्टक का वर्णन करते हैं उसके बारे में हजारीप्रसाद द्विवेदी और जयशंकर प्रसाद दोनों ने कहा है कि ‘सट्टक’ नौटंकी के जैसा एक तमाशा था। इससे पता चलता है कि नौटंकी या नौटंकी जैसे ही तमाम लोक नाट्य प्राचीन समय से भारतभूमि पर पाय जाते रहे हैं। लेकिन इसमें ध्यान देने वाली बात यह है कि भाण और सट्टक से समानता तमाम लोक नाटकों से मिलती है इसलिए इसे नौटंकी का ही पूर्व रूप नहीं कहा जा सकता। भाण और सट्टक को भरतमुनि ने

[1] रामनारायण अग्रवाल, सांगीत एक लोकनाट्य परंपरा, पृ. 129

लोकनाटकों के अर्थ में रूपक का भेद अवश्य माना, सिर्फ नौटंकी विशेष के लिए इन रूपकों का उल्लेख करना उचित नहीं जान पड़ता। नौटंकी के संबंध में यह सर्वविदित है कि यह नाट्य विधा आधुनिक नहीं है, इसकी जड़ें मध्यकालीन लोकजागरण के समय से जुड़ी है। हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि "नौटंकी का वर्तमान रूप चाहे जितना आधुनिक हो, उसकी जड़ें बड़ी गहरी हैं।"[1]

2.2.1.आरंभिक काल: मध्यकालीन समाज में स्वाँग, भगत और ख्याल नाम के प्रदर्शन प्रचलन में थे। नौटंकी का इतिहास स्वाँग, भगत आदि से होकर गुजरता है। इस स्वाँग प्रदर्शन का जिक्र भक्तिकालीन कवियों की कविताओं में बहुत आया है। कबीरदास ने कहा है- *"कथा होय तहाँ स्रोता सोवै वकता मूड पचाया रे / होय जहाँ कहीं स्वाँग 'तमाशा' तनिक न नींद सताया रे।"*[2] इससे स्वाँग की लोकप्रियता तथा मनोरंजन प्रधानता का अनुमान तो लग जाता है और यह भी ज्ञात होता है कि स्वाँग आम जनमानस के बीच खेला जाता रहा था। उत्तर भारत में स्वाँग (बाद में नौटंकी) की प्राचीन परम्परा पर डॉ बिरेन्द्र कुमार चन्द्रसखी ने लिखा है, "नौटंकी के सादृश्य विक्रमी शती में सिद्ध कन्हापा ने डोंभीपा के आह्वान गीत में 'स्वांग' शब्द का उल्लेख किया है। संभवतः 'स्वांग' ही इस सजीली नाट्यकला का मूल रूप है। भक्तिकाल के कवियों-जायसी से लेकर कबीर, रसखान ने अपनी-अपनी कविताओं में स्वाँग शब्द का प्रयोग किया है। ऐसा लगता है कि स्वाँग और तमाशा तत्कालीन परिस्थितियों में जननाटक के रूप में आम जनता में अधिक लोकप्रिय रहे होगें।"[3] इसी प्रकार प्रदर्शनकारी विधा के रूप में एक कला-रुपक इस समय में और मिलता है वह है

---

[1] नारायण भक्त, मंच से उजड़ी मन में बसीः नौटंकी, अभिव्यक्ति हिन्दी (वेब) 21 सितंबर 2009

[2] कबीर, कबीर वाचनावली, (सं.) अयोध्या सिंह उपाध्याय, पृ. 216

[3] डॉ. बिरेन्द्र कुमार चंद्रसखी, सांगीत के विविध आयाम, पृ. 41

भगत। जैसा कि पहले जिक्र किया है कि भगत में भक्तिपरक लीलाओं का गायन-प्रदर्शन होता था। कृष्ण नारायण कक्कड़ मानते हैं कि इस स्वाँग का प्रदर्शन उत्तर भारत में 16 वीं सदी में होता था और भगत उसके बाद में प्रचलित हुआ । उन्होनें नौटंकी से इसका संबंध जोड़ते हुए लिखा है कि, "... उन्होनें (स्वाँग और भगत ने) नौटंकी को आगे एक रूप प्रदान किया। यदि गहराई से देखें तो कुछ तत्वों में, नौटंकी तथा स्वाँग तथा भगत, जो अपेक्षाकृत अधिक शास्त्रीय माने जाते हैं, समान हैं।"[1] स्पष्ट होता है कि स्वाँग और भगत जैसे लोकरंग मध्यकालीन उत्तर भारत में वर्तमान थे। प्रदर्शन की इन्हीं शैलियों में नये कथ्य और भाषा के साथ प्रदर्शन शुरू हुए जिससे इन लोक कलाओं का एक नया नाम पड़ा वह है नौटंकी।

नई शासन व्यवस्था से प्रभावित होकर कलाओं में भी परिवर्तित होने लगता है। भक्तिकाल के अंत तक आते-आते भक्ति की धारा क्षीण होती गयी है और उसका स्थान शृंगार की प्रेमकथाओं ने ग्रहण किया। मुग़ल काल के उदय के साथ दरबारों की स्थापना से मध्यकालीन लगभग सभी कलाओं में शृंगार की प्रधानता स्थापित होने लगी। हिन्दी साहित्य में रीतिकाल भी इसी परिवर्तन का परिणाम है। दरबारों से चलकर यह शृंगार आम जनमानस के बीच भी आया होगा। नौटंकी रंगमंच में शृंगार और वीरतापरक कथाओं की प्रचुरता रही है। यही वह समय है जब स्वाँग, भगत और ख्याल आदि को आत्मसात किए हुए नए रूप और रस में नौटंकी का आविर्भाव हुआ। नारायण भक्त ने लिखा है कि "संगीत प्रधान लोकनाट्य नौटंकी सदियों तक उत्तर भारत में प्रचलित स्वांग और भगत का मिश्रित रूप है। नौटंकी 'स्वांग' और 'भगत' में इस प्रकार घुलमिल गई है कि इसे दोनों से अलग नहीं किया जा सकता।"[2] इसी कारण

---

[1] कृष्णनारायण कक्कड़, नौटंकी विधा:एक प्रारूप और कुछ प्रश्न, लोकनाट्य नौटंकी कुछ प्रश्न(सं.) रवीद्रनाथ बहोरे, पृ. 2

[2] नारायण भक्त, मंच से उजड़ी मन में बसीः नौटंकी, अभिव्यक्ति हिन्दी (वेब), प्रकाशित, 21 सितंबर 2009

बहुत बाद में एक ही नाट्य-विधा को कहीं नौटंकी तो कहीं भगत अथवा स्वाँग के नाम से जाना जाने लगा। डॉ श्याम परमार ने लिखा है कि “नौटंकी, स्वाँग या भगत तीनों एक ही वस्तु हैं। कहीं स्वाँग के नाम से नौटंकी विख्यात है, तो कहीं भगत के नाम से। स्वाँग की प्राचीनता में संदेह नहीं, भगत मध्य-काल की वस्तु है और नौटंकी प्राचीन स्रोत में रीतिकालीन अथवा उसके थोड़े पहले की ऐहिक प्रवृत्तियों की मिली-जुली धारा है।”[1] स्पष्ट होता है कि स्वाँग कुछ पहले से प्रेमकथाओं और मनोरंजन के उद्देश्य से खेला जाता रहा था। और भगत की कुछ बाद में भक्तिआंदोलन के समय भक्तिरस से संबन्धित कथाओं की संगीतमय प्रस्तुति होती थी। समय के साथ लोकरंगों में भी बदलाव आता है फलस्वरूप प्रदर्शन के इन्हीं प्राचीन रूपों से नौटंकी का उद्भव हुआ।

नौटंकी की प्रदर्शन शैली पर उर्दू साहित्य की संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट है। रामबाबू सक्सेना ने ‘तारीख-ए-अदब-ए उर्दू’ में लिखा है कि “नौटंकी का आरंभ उर्दू शायरी और लोकगीतों से हुआ था।”[2] लोकगीत से उनका आशय दो स्तरों पर देखा जा सकता है- एक तो स्वाँग, भगत और ख्याल जैसी परंपरा संगीत पर गाकर प्रदर्शित की जाती थी। दूसरा नौटंकी में स्वरबद्ध किए गए अधिकतर गीत लोकगीत होते थे। इसी मत को आधार मानकर कालिका प्रसाद दीक्षित ‘सुकुमार’ लिखते हैं कि “संभवतः सर्वप्रथम नौटंकी ‘हीरराँझा’ की कथा थी जो आज भी पंजाब के लोकगीतों में अपना अलग स्थान रखती है। ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी में इसका जन्म-काल मानना चाहिए।”[3] ‘रानी नौटंकी’ और ‘हीररांझा’ दोनों कहानियों में अगाध प्रेम और सुंदर

---

[1] डॉ श्याम परमार, लोकधर्मी नाट्य परंपरा, पृ. 59

[2] रामबाबू सक्सेना, तारीख-ए-अदब-ए उर्दू, पृ. 140

[3] डॉ श्याम परमार, लोकधर्मी नाट्य परंपरा, पृ. 47 से उद्धृत

नायिका की कथा का बखान है। प्रश्न यह उठता है क्या ये दोनों कहानियाँ अपने मूलरूप में समानता रखती हैं

नौटंकी के छंद-विधान में उर्दू साहित्य का योगदान विद्यमान है। तेरहवीं शताब्दी में अमीर खुसरो ने जिस भाषा और छंदों में साहित्य लिखा उसका प्रयोग नौटंकी में आज भी वर्तमान है। उर्दू साहित्य का एक छंद है 'बहर-ए-तबील' जो नौटंकी की जान है। स्पष्ट है कि जो लोकनाट्य की बनावट में एक लचीलापन होता है, इसलिए वह परिस्थिति अनुकूल वस्तु एवं तकनीक को आत्मसात कर नई ऊर्जा और तेवर के साथ प्रस्तुत होता है। यही प्रक्रिया नौटंकी के साथ भी घटित हुई।

2.2.2. आधुनिक काल: डॉ श्याम परमार ने लिखा है कि "18वीं शताब्दी तक आते आते नौटंकी समस्त उत्तर भारत में फैल चुकी थी। जहाँ-जहाँ लोक प्रचलित मनोरंजन के साधन विद्यमान थे, उसका संपर्क नौटंकी की प्रवृत्तियों से होने लगा था।"[1] उर्दू साहित्य का भी यह उत्कर्ष का समय था। अतः नौटंकी की भाषा एवं छंद-विधान आदि पर उर्दू का स्पष्ट प्रभाव है। 18 वीं शताब्दी तक इस रंगमंच का चलन शुरू हो गया था। 1882 ई. में नौटंकी नाम से पहला आलेख मिलता है। अश्विनी कुमार पंकज ने लिखा है, रानी नौटंकी और फूल सिंह की प्रेमकथा पर पहला संगीतप्रधान नाटक 'सांगीत रानी नौटंकी का' 1882 में लेखक खुशीराम ने प्रकाशित किया था।[2] माना जाता है इसी से नौटंकी नाम का लोक नाटक प्रचलित हुआ। इसी के आसपास एक और नौटंकी का आलेख मिलता है। पं. मुरलीधर शहजादी ने नौटंकी की लोक प्रचलित

[1] डॉ श्याम परमार, लोकधर्मी नाट्य परंपरा, पृ. 48

[2] अश्विनी कुमार पंकज, 36 ग्राम की स्त्री नौटंकी, http://punjprakash.blogspot.com/2011/12/blog-post_21.html

गाथा पर एक नाट्य आलेख लिखा जो 1901 में प्रकाशित हुआ।[1] इस तरह नौटंकी को विद्वानों ने जिन विशेषताओं के आधार पर परिभाषित किया वह सब इसी समय की है।

इसी समय हाथरस की नौटंकी विशेष रूप से लोकप्रिय हो रही थी जिसके मुख्य प्रयोगकर्ता प. नत्थाराम शार्मा थे। इनसे पूर्व हाथरसी स्वांग का एक अखाड़ा वहाँ मौजूद था। नत्थाराम शर्मा ने नौटंकी को नया रूप दिया और उसे बुलंदियों पर ले गए। पंडित नत्थाराम के अलावा गुरु चिरंजीलाल, इंदरमन, वासुदेव जी बासम, जिन्होंनें नौटंकी की हाथरस शैली की शुरुआत 1830 में की। नत्थाराम शर्मा का जन्म 1874 हाथरस जिले के दरियापुर गाँव में हुआ था।[2] नारायण भक्त लिखते हैं कि “पं. नत्थाराम शर्मा गौड़ ने देशभक्ति, चरित्रबल, वीररस, ईश्वरभक्ति आदि विभिन्न विषयों को लेकर अनेक कवित्वपूर्ण नौटंकियों की रचना की, जिनमें अमर सिंह राठौर, भक्त मोरध्वज, हरिश्चंद्र, भक्त पूरनमल, दुर्गावती, आल्हा का ब्याह, नल चरित्र, रानी पद्मावती आदि प्रमुख हैं।”[3] इसमें देश भक्ति आदि विषयों को लेकर प्रशंसा भाव अधिक तथ्य कम, हाथ रस शैली में देश प्रेम, स्वधिनता की चेतना जैसे मुद्दे बहुत बाद में आए धार्मिक, पौराणिक और भक्ति प्रधान एवं नैतिक विषयों पर खूब नौटंकी होती रहीं। लेकिन इससे यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि इन्होंनें इस क्षेत्र में कुछ कम काम किया है। हीरामणि सिंह साथी ने लिखा है कि “नत्थाराम शर्मा ने नौटंकी को जीवंत ही नही बनाया वरन उसे जन-जन से जोड़ने का कार्य भी किया।”[4] उन्होंने

---

[1] नारायण भक्त, मंच से उजड़ी मन में बसी: नौटंकी, www.abhivyakti-hindi.org/natak/rangmanch/2009/nautanki.htm

[2] नारायण भक्त, मंच से उजड़ी मन में बसी: नौटंकी, www.abhivyakti-hindi.org/natak/rangmanch/2009/nautanki.htm

[3] नारायण भक्त, मंच से उजड़ी मन में बसी: नौटंकी, www.abhivyakti-hindi.org/natak/rangmanch/2009/nautanki.htm

[4] हीरामणि सिंह ‘साथी’, लोक धारा, पृ. 99

नौटंकी का अपना अलग ट्रेनिंग स्कूल खोला जिसमें वह कलाकारों को प्रशिक्षण देते थे, जिसके उस्ताद इंदरमन थे। 'नत्था चिंगारी-मंडली' उस समय की प्रमुख व्यावसायिक मण्डली के रूप में प्रसिद्ध थी। नत्थाराम शर्मा की नौटंकियों में वीर-पराक्रम, देश प्रेम, नैतिकता आदि भावनाओं का उचित समावेश है।

कानपुर नौटंकी शैली की नौटंकी का प्रारम्भ 1910 ई. में हंगामाखेज प्रस्तुति से हुआ।[1] इस शैली को स्थापित करने और उसे दूर तक प्रसारित करने में श्रीकृष्ण पहलवान की बड़ी भूमिका है। सुरेश सलिल ने लिखा है कि "... जल्दी ही उनकी चार नौटंकी मंडलियाँ खड़ी हो गई और उन्होंनें गाँव-गाँव, नगर-नगर गर्ज यह कि समूचे देश में घूम-घूम कर प्रदर्शन किए इससे नौटंकी का भी विकास हुआ और व्यावसायिक संभावनाएँ भी बढ़ीं।"[2] इस शैली को शिखर तक पहुँचाने में तिरमोहन उस्ताद, लम्बरदार, छिद्दन उस्ताद गुलाब बाई आदि की बड़ी भूमिका रही। तिरमोहन उस्ताद ने सबसे ज्यादा शोहरत और धन कमाया। सुरेश सलिल के अनुसार त्रिमोहन का नौटंकी के क्षेत्र में आगमन 1920 ई. आसपास हुआ था। उन्होनें लिखा है कि "त्रिमोहन ने नौटंकी के अभिनय-पक्ष और संवादो की अदायगी में कुछेक क्रांतिकारी परिवर्तन किये। उन्होनें संगीत से बोझिल धीमी नाट्य को सम्प्रेषण के मार्ग की एक बाधा के रूप में देखा और उसके वर्चस्व को कम करते हुए उन्होनें आंगिक चेष्टाओं और एक्शन प्रधान भंगिमाओं को उभारा।"[3] त्रिमोहन ने अपनी नौटंकी मंडली में स्त्री कलकारों को जोड़ा। उनकी मंडली में हीरोइन का रोल गुलाबबाई ही करतीं थीं। उस समय शायर यासीन ने काफी सारी नौटंकियाँ (आलेख) उनकी मंड़ली के लिए लिखीं जिनमें खुदा दोस्त,

---

[1] सुरेश सलिल, (सं.) लोकनाट्य नौटंकी कुछ प्रश्न, पृ.19

[2] सुरेश सलिल, (सं.) लोकनाट्य नौटंकी कुछ प्रश्न, पृ.19

[3] सुरेश सलिल, (सं.) लोकनाट्य नौटंकी कुछ प्रश्न, पृ.21

गुलबदन, ग़ाफिल, मुसाफिर, गुलवकाबली काफी चर्चित रहीं। पुलिस द्वारा कानपुर से निकाले जाने के बाद उन्होंने कन्नौज से नौटंकी को नया आयाम दिया और बहुत से नए कलाकारों को अपने साथ जोड़ा।

इसके बाद नौटंकी का तत्कालीन प्रचलित रूप सम्पूर्ण उत्तर भारत में हवा के साथ फैलने लगा। इधर कानपुर में बड़ी मशहूर नौटंकी कंपनी की स्थापना हुयी जिसने स्वाधीनता आंदोलन के समय में जन जागृति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1913 ई. में इलाहाबाद के महावीर मिश्र ने अपनी नौटंकी मंडली बनाकर यहाँ नौटंकी का आगाज किया। इस समय इलाहाबाद में कटरा के रामफल और संजीदगंज के जगदेव की गायकी बहुत लोकप्रिय हुयी। इसी से प्रभावित होकर इसी के आसपास एक और मशहूर कंपनी स्थापित हुयी-श्रीराम सांगीत कंपनी (1915ई.)।[1] इस तरह नौटंकी हाथरस एवं कानपुर से निकलकर दूर-दूर शहरों और गाँवों में स्थापित होने लगी।

भारत के लगभग सभी लोकनाटकों में महिला चरित्र की भूमिका स्त्री-वेश में पुरुष ही अदा करते थे। 1930 ई. के आसपास नौटंकी के क्षेत्र में सबसे बड़ा क्रांतिकारी बदलाव गुलाब बाई के रूप में आया। पद्म श्री और संगीत नाटक अकादमी पुरुस्कार से सम्मानित गुलाब बाई को नौटंकी में त्रिमोहन लाए थे। उन्होंने इनको गायन, अभिनय और नृत्य में प्रशिक्षित किया। गुलाब बाई इनके पास जब सीखने आईं थीं तब वे मात्र 14-15 वर्ष की थीं।[2] नौटंकी में अभिनय करने वाली गुलाब बाई प्रथम महिला थीं। बाद में इनकी देखा-देखी में तमाम महिला कलाकारों का विभिन्न नौटंकी मंडलियों प्रवेश शुरू हो गया। गुलाब बाई के बाद इनकी बहने भी नौटंकी में आई।

[1] राजकुमार श्रीवास्तव, इलाहाबाद की नौटंकी, लोकनाट्य नौटंकी कुछ प्रश्न(सं.) रवीद्रनाथ बहोरे, पृ. 82
[2] दीप्ति प्रिया महरोत्रा, नौटंकी की मालिका, पृ. 12

नौटंकी में स्त्री कलाकारों के प्रवेश से नौटंकी में नई जान आ गयी। जहाँ तक मुझे ज्ञात है उत्तर भारत कोई ऐसा लोकनाटक नहीं था जिसमें स्त्रियाँ अभिनय करती हो। नौटंकी में स्त्रियों के प्रवेश से नाट्य-विधा में नवसंचार निर्मित हुआ। नौटंकी में स्त्रियों के प्रवेश एक तरफ तो उनकी प्रतिभा को पहचान मिली दूसरी तरफ नाट्य-विधा में गायकी और पत्रानुकूल अभिनय का चलन बना, स्त्री चरित्र की भूमिका स्त्री पुरुष की पुरुष।

इस तरह से नौटंकी धारा इस समय तक वेग पकड़ चुकी थी। गुलाब बाई के समय में ही हजारों की संख्या में नौटंकी मंडलियाँ उत्तर भारत के हिन्दी प्रदेश में चल पड़ी जो दूर-दूर तक प्रदर्शन करने जाती थी। शाहजहाँपुर, पीलीभीत, लखीमपुर, हरदोई, लखनऊ आदि सभी बड़े नगरों और कस्बों में नौटंकी कंपनियाँ खुली और 20वीं शदी के अंतिम तक खूब चलीं, फिर इसकी गति मद्धिम पड़ गयी। गाँव-देहात में नौटंकी मंडलियाँ बची हुईं हैं उनमें वह कलात्मक प्रतिबद्धता नहीं रही जो नौटंकी में हुआ करती थी। अब नौटंकी पर नृत्य हावी है। इसके भी बहुत से कारण हैं इनमें इन कलाकारों का कोई दोष नहीं है।

2.3 नौटंकी रंगमच का स्वरूप

नौटंकी उत्तर भारतीय जनसाधारण में मनोरंजन के साथ ही उस समाज की गहन कलात्मक अभिव्यक्ति है। नौटंकी से इस समाज और संस्कृति को बखूबी पहचाना जा सकता है। अन्य लोक विधाओं की तरह नौटंकी भी काल और समाज सापेक्ष रहती है। इस पर ऐतिहासिक दृष्टि डाले तो पता चलता है कि इस नाट्य विधा ने जनमानस को उतना ही आंदोलित किया जितना कि एक शिष्ट कला करती है। यह हिन्दी का एक पारंपरिक रंगमंच है जिसमें नाट्य की सभी विशेषताएँ मिलती हैं। इसकी कला और

तकनीकी साधन को निम्नलिखित बिन्दुओं में देख सकते हैं। यही सब कलात्मक और तकनीकी पक्ष मिलकर नौटंकी का स्वरूप निर्धारित करते हैं।

2.3.1 नौटंकी का प्रस्तुतीकरण: सभी लोक नाटकों की प्रस्तुति लोक-समाज के मुक्त समय और और संसाधनों पर निर्भर करता है। लोक विधा होने के कारण, गाँव या शहर के खुले मैदान में इसका मंच बनाया जाता है। नौटंकी लोकनाटक की प्रस्तुति खुले मंच पर ही होती है जिसके चारों तरफ संगीत वादक बैठते हैं। नौटंकी की कानपुर शैली ने मंच को पर्दे आदि लगाकर सजाया लेकिन है वह साधारण ही। इसका मंच एक घंटे के समय में तैयार किया जा सकता है। समान्यतः नौटंकी का प्रदर्शन दस से ग्यारह बजे की की तरफ प्रारभ होता है और सुबह सूर्य उदय तक चलता है। नौटंकी के 'म्यूजिसियन' नगाड़ा आदि को एक घंटा पहले से बजाना शुरू करते हैं। यह संगीत अपनी लय-ताल में इतना मोहित करता है कि नौटंकी प्रारम्भ होने से पहले ही दर्शकों की भीड़ एकत्रित हो जाती है।

नौटंकी प्रारम्भ होने से पूर्व मंच पर गणेश नृत्य करते हैं, उसके सभी कलाकार आकार ध्रुव-पद में गणेश वंदना करके गणेश अपने काम से मुक्त हो जाते हैं कलाकार अपने अभिनय के तैयार हो जाते हैं। इस वंदना गायन को भेंट गायन के नाम से जाना जाता है। गणेश का प्रारम्भ में मंच पर नृत्य और वंदना हाथरस शैली में प्रचलित है। ज्यादातर नौटंकी मंडलियाँ अपने आराध्य देवी-देवता का की बंदना करके स्तुति गान करती हैं। कानपुर शैली की त्रिमोहनलाल नौटंकी कंपनी फूलमती देवी की वंदना करते थे वहीं श्रीकृष्ण पहलवान सरस्वती की वंदना करते थे। इस वंदना या भेंट गायन के समय मंच पर सभी पात्र आते हैं, मंच और मंच पर रखे साजो को हाथ से चूमते हैं और कोरस में खड़े होकर भेंट गाते हैं। में मंच को यह प्रणाम करने की विधि प्रारम्भ में

कानपुर नौटंकी थी लेकिन बाद में सभी ने अपना लिया। मंच पर कोरस में गाने की परंपरा कानपुरी नौटंकी में श्रीकृष्ण पहलवान ने शुरू की थी। इस संदर्भ में राम नरायण अग्रवाल ने लिखा है कि "कोरस-गायन का यह क्रम कानपुर के श्रीकृष्ण पहलवान ने यहाँ से एक मजबूरी के कारण प्रारम्भ किया गया था परंतु इसके कारण प्रदर्शन के आरंभ में सांगीत में एक भराव आ गया और प्रभावोत्पादकता की भी वृद्धि हुई, अतः अंत में इसे हाथरसी तथा अन्य स्वाँगों ने भी अपना लिया।"[1]

इसके बाद कथा परिचय प्रारभ होता है। रंगा नौटंकी का सारांश गाकर सुनाता है और मुख्य पात्रों का परिचय देता है। नौटंकी में शस्त्रीय नाटकों की तरह कोई घटना अचानक नहीं घटती है। घटना से परिचय पहले ही करा दिया जाता है। लेकिन कानपुर शैली की नौटंकी में प्रारम्भ किसी आकस्मिक दृश्य से या राजा का दरबार अथवा रानी का महल हो चोरों की गुफा आदि रंग-बिरंगे दृश्य से होता है।[2] फिर नाटक शुरू होता है नाटक में दृश्य जब बदलते हैं तो उस बीच थोड़े समय के लिए नृत्य होता है। यह नृत्य कानपुर की नौटंकी में अधिकता में है। कानपुर नौटंकी दृश्यों के साथ अंकों का विभाजन है कथा में तो, अंकों के बीच गीत-संगीत और नृत्य का समा बंधता था। दीप्ति प्रिया महरोत्रा ने लिखा है कि "नौटंकी शो में दृश्यों के बीच ब्रज लोक गीतों का बाकायदा गायन होता है। यह लोकप्रिय गीत-परंपरा सामाजिक परिवेश, स्थानीय रीति-रिवाज और रिश्ते नातों को प्रतिबिंबित करते थे।"[3] इस प्रकार नौटंकी की प्रस्तुति के पारंपरिक नियम है और यह नियम परिवर्तित भी होते रहते हैं। आज भी नौटंकी में प्रस्तुति के इस आचरण का ध्यान रखा जाता है।

---

[1] राम नारायण अग्रवाल, सांगीत एक लोकनाट्य परंपरा, पृ. 192

[2] दीप्ति प्रिया महरोत्रा, नौटंकी कि मालिका गुलाब-बाई पृ. 77

[3] दीप्ति प्रिया महरोत्रा, नौटंकी की मालिका-गुलाब बाई, पृ. 83

2.3.2 नौटंकी में अभिव्यक्ति विषय: भारत की प्रत्येक लोकनाट्य विधा का एक विषय क्षेत्र होता है। कुछ लोकनाट्य धार्मिक-पौराणिक कथाओं पर आधारित तो कुछ सामाजिक। नौटंकी का संबंध सामाजिक अभिव्यक्ति से अधिक रहा, सामाजिक अभिव्यक्ति में शृंगार और वीर रस की पारंपरिक प्रधानता मिलती है लेकिन सामाजिक राजनैतिक विषय भी नौटंकी में बखूबी मिलते हैं। इसमें गाँव-समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपनी कला-क्षमता के अनुसार अभिनय कर सकता है, वह नायक या खलनायक कोई भूमिका निभा सकता है। इसमें राजा, डाँकू आदि की कथाएँ पारंपरिक होते हुए भी तत्कालीन सामाजिक संदर्भों से जुड़ी होती है। अश्लील और आदर्श की प्रस्तुति एक ही मंच पर प्रस्तुत की जाती है। धर्म-पुराण, लोककथा या जीवन की कोई भी घटना इस मंच पर अभिनीत हो सकती है।

नौटंकी की कथाओं का सम्बन्ध पौराणिक आख्यानों की अपेक्षा वीर, प्रणयी, रोमांच और भक्त पुरुषों के कार्यों से ज्यादा होता है, ये विषय दर्शक को शास्त्रीयता से दूर समाजिक जीवन से जोड़ते हैं। नौटंकी ही नही यह अधिकतर सभी लोकनाट्यों की विशेषता है कि उनके विषय देश-काल और समाज के अनुसार परिवर्तित रहे हैं। नौटंकी की कहानी के विषय में डॉ सीताराम झा 'श्याम' ने लिखा है, "नौटंकियों में प्रेम से परिपूर्ण घटनाओं का का समावेश तो था ही, पीछे समाज के विशिष्ट वर्ग के लोगों की रुचियों का ध्यान कर धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक चरित्रों के आधार पर भी नौटंकी होने लगी जैसे– सत्यहरिश्चंद्र, मोरध्वज, पूरनमल आदि।"[1] अब नौटंकी में भक्ति के विषय में बस इतना ही बचा है कि नौटंकी का प्रारंभ एक मंगलाचरण से होता है, जिसमें अपने अराध्य देव की स्तुति होती है।

[1] डॉ सीताराम झा 'श्याम', हिन्दी नाटकसमाजशास्त्रीय :, पृ .82

नौटंकी के विषय स्वाधीनता आन्दोलन के समय परिवर्तित हुए। जो कार्य हिंदी में भारतेंदु, और प्रेमचंद जैसे प्रवीण कर रहे थे इधर नौटंकी में वह कार्य 'बहादुर लड़की' नामक नौटंकी कर रही थी। बहादुर लड़की एक अंग्रेज अफसर को उसकी बदतमीजी पर थप्पड़ मारने से नहीं चूकती। साम्राज्यवादी शक्तियों से इस विधा में भी प्रतिरोध किया है। अंग्रेजों और उनकी नीतियों का नौटंकी में खूब विरोध हुआ। यह लोक विधा कानपुर के श्रीकृष्ण पहलवान की नौटंकी 'वीर बालक' (1913 ई.) स्वाधीन चेतना की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। क्रूरता के प्रति यही प्रतिरोध इस कला को विशिष्ट बनाता है। प्रो.अब्दुल बिस्मिल्लाह ने लिखा है, "वीर बालक' नौटंकी गाँधीवादी दर्शन से प्रभावित है, जिसमें आज़ादी के लिए आत्मबलिदान की भावना अनुस्यूत है।"[1] जगनिक के आल्ह-खंड पर आधारित तिरमोहन ने अनेक नौटंकियाँ खेलीं, जिनके माध्यम से राष्ट्रीय समर्पण, शौर्य और पराक्रम जगाने का कार्य किया। स्वाधीनता आन्दोलन को जनता तक पहुचाने के लिए बहुत-सी नौटंकीं स्वतंत्रता सेनानियों के जीवन पर खेली गयीं जैसे- 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई', 'सुभासचन्द्र बोस', 'बंगाल का शेर', 'अबुल कलाम आजाद', 'जवाहर जीवन' और 'राजेंद्र प्रसाद जी' आदि ।

इसी तरह ऐतिहासिक विषयों पर भी नौटंकी खेलीं जाती रही जैसे- 'राणाप्रताप', 'अमर सिंह राठौर' तथा सामाजिक नौटंकी 'नादान बालम, 'ननद-भौजाई' इत्यादि । शिष्ट साहित्य में जिस स्त्री अस्मिता की लडाई लड़ी जा रही है उसकी आवाज भारतीय लोक साहित्य में मिलती है। प्रतिरोध की यह आवाज नौटंकी में भी सुनाई देती है। नौटंकी में प्रयुक्त होने वाले गीत, लोक गीत होते थे उनमें स्त्रीमन की अभिव्यक्ति में पुरुषसत्ता का विरोध समाहित रहता था। दर्शक रुचि के अनुसार

[1] अब्दुल बिस्मिल्लाह उत्तर आधुनिकता के दौर में76 .पृ ,वही ,

रास-रोमांस की प्रणय कहानियाँ (लैला मजनू, सीरी फरहाद आदि) आदि भी नौटंकी का विषय रहे हैं है। नौटंकी कलाकारों ने हिन्दी फिल्मों पर आधारित नौटंकियों की प्रस्तुति की जैसे-'मुगले-आजम' 'शोले'। जन रुचि के अनुसार हिंदी फिल्मों पर नौटंकी खूब खेली गईं। यह तो लोक विधाओं का लचीलापन होता है कि वह अपने समय के साथ चलने लग जाती हैं ।

2.3.3 संगीत-गायन और वाद्ययंत्र: लोक नाटकों में प्रायः गीत-संगीत की प्रधानता होती ही है। नौटंकी भी गायन प्रधान लोक कला से अपना संबंध रखने के कारण, इसमें गीत-संगीत की प्रधानता है। गायन शैली के कारण ही नौटंकी की तुलना पश्चिमी 'ओपेरा' से की जाती है। यह संगीत आधारित लोक रंगमंच है जिसके छंद अपने आप में इसका शास्त्र निर्मित करते हैं। पूरी लय और तुक इस रंगमंच की कलात्मक प्रतिबद्धता है। हाथरस शैली की नौटंकी में तो संवाद अदायगी शत-प्रतिशत संगीत पर ही आधारित है। नौटंकी में गायन और संगीत के कारण ही तमाम विद्वान नौटंकी शब्द का संगीत के संदर्भ में अर्थ खोजते हैं। गुलाब बाई ने नौटंकी में नौ रागों को ध्यान में रखते हुए इसका नाम नौटंकी बताया हैं। इसके नामकरण प्रसंग में बताया जा चूका है कि प्रो. कैथ्रिन हैंसन जैसी विद्वानों नौटंकी को संगीत के आधार पर परिभाषित करती हैं।

नौटंकी के गायन में एक ठहराव जो कानपुर शैली की नौटंकी में नहीं मिलता है वह हाथरस शैली में नहीं है। हाथरस की शैली पर ब्रज की रासलीला के संगीत का प्रभाव होने के कारण नगाड़े में भी शास्त्रीय वादन शैली का प्रभाव है। दादरा, ठुमरी आदि इसकी शास्त्रीयता का ही प्रमाण है लेकिन गाने में पूर्ण शास्त्रीयता का निर्वाह नहीं हो पाया है। गुलाब बाई ने इसे बहुत हद तक अपनाया है। कानपुर की नौटंकी शैली में

गायकी, अदाकारी तथा नृत्य पर लखनऊ संगीत घराने का प्रभाव है। नौटंकी में नगाड़े का प्रमुख स्थान है।

परवर्ती काल में फ़िल्मी ‘रंगीन’ गीतों ने नौटंकी पर धाक जमा, उन्होंने उपरोक्त पारंपरिक गीतों का स्थान ले लिया। इस तरह डिस्को डांस की तरफ नौटंकी बढ़ने लगी, यही इसकी बिडम्बना है। नौटंकी को सामंती-रईसों ने धीरे-धीरे अपनी विलासिता का साधन बना लिया, जिससे फूहड़ता और अश्लीलता नौटंकी कला पर हावी होने लगी। इसका मुख्य कारण, धनाड्यों द्वारा नौटंकी में कार्यरत गरीब व निम्न जाति के लोक कलाकारों को पैसा और शक्ति से विलासिता के साधन के रूप में नियंत्रित करना रहा। उन्होंने नौटंकी के नाम पर अश्लील नृत्य और हास-परिहास की फरमाइश की, जिसको पूरा करना नौटंकी कर्मियों की मजबूरी रही। अब स्थिति यह है कि अपने को सभ्य कहलाने वाला व्यक्ति लोक कला नौटंकी से परहेज करने लगा।

नौटंकी का प्राण तत्व नगाड़ा है। कुछ विद्वान मानते हैं कि इस नाट्य विधा का नाम नौटंकी नगाड़ा के कारण पड़ा। कुछ लोक-समाज में इसे नक्करा नाम से भी जाना जाता है। नौटंकी रंगमंच में नगाड़े की भूमिका बड़ी है, अपने शुरुआती दौर में जब लाउडस्पीकर नहीं हुआ करते थे तो नगाड़े के द्वारा ही नौटंकी अपना परिचय चार मील दूर तक देती थी। संगीत में नौटंकी का ध्वनि-सौंदर्य भी इस नगाड़े और नग्गडियों के कारण बन पड़ता है। इसलिए नौटंकी का संगीत-शास्त्र इस नगाड़ा के द्वारा ही बनता है। नगाड़े की गड़गड़ाहट नौटंकी मंच पर आदि से अंत गूँजती है। दर्शकों को प्रदर्शन-स्थल तक लाने में यह इसकी बड़ी भूमिका रहती है। हीरामणि सिंह ‘साथी’ ने लिखा है कि “नगाड़ा की थाप से शकुन्तला हो या सीता, जैला हो या शीरी मंच पर आती और

नगाड़े के साथ ही अभिनय तथा संवाद संप्रेषित करती।"[1] यही इस रंगमंच की विशिष्टा है जो इसे अन्य भारतीय रंगमंच से अलग करता है। नाट्य कला के इतिहास में जो यथार्थवाद का विरोध बहुत बाद में चला वह नौटंकी में पहले से वर्तमान है।

2.3.4 नौटंकी में छंद-विधान एवं भाषा: संगीत के लिए पद्य आवश्यक है। पद्य की भाषा छंद है। नौटंकी संगीत प्रधान विधा इसमें छंदों का विशेष महत्व है। नौटंकी अभिनय से अधिक गायन से पूर्ण होती है इसलिए नौटंकी आलेख में छंदबद्धता का स्थान बड़ा है। नौटंकी में छंदो की प्रतिबद्धता पर ध्यान आकर्षित करते हुए मुद्ररक्षास ने लिखा है कि "नौटंकी में कुछ उसके चारित्रिक छंद होते हैं और कुछ आलंकारिक अथवा सहायक। दोहा, दौड़, चौबोला और बहरतबील नौटंकी के चारित्रिक छंद हैं और लावणी, गजलें, कवित्त, दादरा आदि सहायक छंद। इन सहायक छंदों में फेरबदल की जा सकती है, लेकिन चरित्र बनाने वाले मूल छंदों में नहीं।"[2] नौटंकी लेखन इसके छंद-विधान के कारण आसान नहीं है। नौटंकी के छंदों को परिभाषित करते हुए विजयबहादुर श्रीवास्तव ने लिखा है कि "नौटंकी के समस्त छंदों में से अधिकांश छंद हिन्दी साहित्य के सुपरिचित छंद हैं, जिन्हें लय के आधार पर अलग-अलग नामों से जाना जाता है। कुछ एक छंद ऐसे भी जिन्हें नौटंकी कलाकारों की देन कहा जा सकता है।"[3] इन्होनें नौटंकी छंदों को दो भागों में बाँटा है – 1) मुख्य या चारित्रिक छंद 2) सहायक या आलंकारिक छंद।

नौटंकी के छंद-विधान में हिन्दी के अपने लोक के छंद तो हैं ही साथ ही उर्दू साहित्य लेखन में प्रयुक्त छंदों का भी प्रयोग हुआ। तेरहवीं शताब्दी में अमीर खुसरो ने

---

[1] हीरामणि सिंह 'साथी', लोक धारा, पृ. 98

[2] मुद्राक्षस, नौटंकी आलेखगत परीक्षण, (सं.) लोकनाट्य नौटंकी कुछ प्रश्न, पृ. 57

[3] विजय बहादुर सिंह, क्या है नौटंकी की कानपुर और हाथरस शैली, (सं.) लोकनाट्य नौटंकी: कुछ प्रश्न, पृ. 27

जिस भाषा और छंदों में साहित्य लिखा वह छंद-भाषा नौटंकी में आज भी वर्तमान है। उर्दू साहित्य का एक छंद है 'बहर-ए-तबील' जो नौटंकी की जान है। नौटंकी में हिन्दी के छंदों में प्रमुख रूप से दोहा, चौबोला, लावणी, सोरठा, दौड़ आदि छंदों का विशेष रूप से प्रयोग होता है। नौटंकी में उर्दू संस्कृति से आने वाले बहर-ए-तबील, रेख्ता, कव्वाली, शेर, गज़ल आदि हैं। नौटंकी के प्रचलित छंदों को अपनी बुलंद आवाज़ में जब गाते थे, तो सुनने वाले मंत्रमुग्ध रह जाते थे। हाथरस और कानपुर दोनों ही शैलियों में लगभग समान छंद का प्रयोग होता है।

भाषा: सभी लोकनाट्य अपनी लोक भाषा में जन्मलेते हैं और उसी में पुष्पित फलित होते हैं। इसलिए नौटंकी की भाषा भी उसके लोक-समाज की भाषा है। इसमें ब्रज क्षेत्र में देशज ब्रज, पूर्वी क्षेत्र बिहार-छत्तीसगढ़ में स्थानीय बोलियों का प्रयोग होता है। इन स्थानीय भाषा-बोलियों के बावजूद नौटंकी में उर्दू और हिन्दुस्तानी भाषा का विशेष प्रचलन है। नौटंकी की भाषा में हिंदी, उर्दू तथा लोकभाषा एवं क्षेत्रीय बोलियों के शब्दों का प्रयोग अधिक होता है। नौटंकी संवाद गद्य और पद्य दोनों में होते हैं। पात्रों तथा घटनाओं के अनुसार भाषा के रूप में कोई भिन्नता नहीं होती। भाषा लाक्षणिक नहीं, सरल और सुबोध होती है। लेकिन जहाँ व्यंग्य आ जाता है वहाँ लाक्षणिक भाषा का भी प्रयोग होता है। हाथरस की नौटंकी की भाषा में ब्रज, उर्दू और खड़ी बोली का मिला-जुला रूप होता है। कानपुर शैली की नौटंकी की भाषा में कन्नौजी, उर्दू और खड़ी बोली के शब्द होते हैं।

2.3.5 नौटंकी आलेख: मेरी जानकारी में गिने-चुने ही लोक नाटक हैं जिनके मंचन के लिए आलेख (स्क्रिप्ट) लिखे जाते हैं। नौटंकी भी इन्हीं मे से एक है जहाँ नाट्य-प्रस्तुति के लिए आलेख की आवश्यकता होती है। नौटंकी आलेखों का लेखन कार्य

नौटंकी आखाडों की पहचान है। इन अखाड़ों का गुरु या मुख्य कलाकार मंडली या अखाड़े के अन्य कलाकारो के सहयोग नौटंकी आलेख लिखते हैं। इसकी पुष्टि राम नारायण अग्रवाल के इस कथन से की जा सकती है, वह लिखते हैं कि “चाहे मुख्य लेखक कोई हो परंतु उसे अखाड़े के शिष्य सभी कवियों का सहयोग प्राप्त रहता है और वे सभी मिलकर यथास्थान गीत, संवाद आदि जोड़कर तथा काट-छांट करके सांगीत को अंतिम रूप देते हैं। ऐसी दशा में किसी एक व्यक्ति की कृति न रहकर पूरे अखाड़े की कृति बन जाती है। इसलिए रचना चाहे किसी की हो उसके रचनाकार के रूप में अखाड़े के गुरु का नाम ही डाल दिया जाता है।”[1] इस तरह नौतनकी आलेख को सामूहिक साहित्य कृति के रूप में भी देखा जा सकता है।

नौटंकी आलेखों के संबंध में कैथरीन हैन्सन लिखते हैं कि “The dramatic literature of *Svang* and *Nautanki* is a unique resource in its large size, chronological span, and link with a surviving performance practice. Its texts afford an exceptional opportunity to study a single folk genre in rich detail.”[2] (अपने वृहद रूप में स्वाँग और नौटंकी का नाटकीय साहित्य कालानुक्रमिक है। यह सचेत प्रदर्शन के लिए अभ्यास का अद्वितीय श्रोत है। ये आलेख इसकी लोक शैली के अध्ययन के लिए अद्वितीय साधन हैं।) जैसा कि मैंने

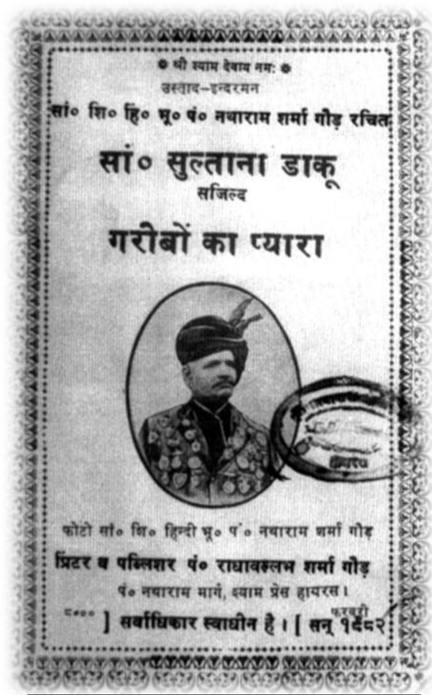

'सुल्ताना डाकू' का नौटंकी आलेख

[1] रामनरयण अग्रवाल, सांगीत एक पारंपरिक लोकनाट्य पृ. 272

[2] Kathryn Hansen, Ground for play the nautanki theater of north india, p. 86

पहले भी बता चुका हूँ नौटंकी और स्वांग एक दूसरे के लिए पर्याय तौर पर प्रयोग होते रहे हैं। इन नौटंकी आलेखों का छपाई कार्य बहुत बाद की बात है जब उत्तर भारत में प्रिंटिंग प्रेस का प्रचलन हो गया था। 1860 के दशक तक नौटंकी आलेख बुकलेट फ़ॉर्म में प्रकाशित होकर बिकती थी। 1967 ई. के बाद से समय किसी भी प्रकाशित कृति को ब्रिटिश सरकार को दिखाना होता था और बिक्री के लिए प्रकाशित कृति एक प्रति ब्रिटिश सरकार के पास जमा करानी होती थी।[1] नौटंकी रंगमंच के प्रचलन के साथ ही नौटंकी आलेख भी लोकप्रिय होने लगे और उनका भी एक बाज़ार निर्मित हो गया। आज भी उत्तर भारत के प्रसिद्ध मेले, बाज़ार आदि इन आलेखों की बिक्री होती होती है। लेकिन अन्य एलेक्ट्रोनिक मनोरंजन माध्यमों के बढ़ते प्रभाव के कारण ये बाज़ार विलुप्त होते जा रहे हैं। अब इन बाज़ारों में मात्र धार्मिक-व्रत संबंधी किताबों की ही बिक्री होती है।

पारंपरिक लोक-कथा हो या तत्कालीन घटना से प्रभावित नौटंकी आलेख लिखे जाते थे। परंपरा से चली आ रही कथाओं का तत्कालीन आवश्यकताओं के अनुसार पुनः लेखन अधिक मात्रा में रहा लेकिन मौलिख आलेख भी प्रस्तुति के लिए लिखे गए। और बाद में संबन्धित अखाड़े की परंपरा में आगे प्रवाहित होता रहता है। नौटंकी उत्तर भारतीय जनसाधारण के मनोरंजन का सबसे सुलभ साधन है। शिष्ट विधाओं की तरह नौटंकी भी काल और समाज सापेक्ष रही जिसका पूर्व में जिक्र किया गया है। ये आलेख लोक जीवन का साहित्य रहे हैं। उसने जनमानस को उतना ही आंदोलित किया जितना कि एक शिष्ट कला करती है। नौटंकी आलेख इस बात का प्रमाण है कि यह सिर्फ मनोरंजन का ही साधन नहीं रहा, यह जनसाधारण के संचार का भी साधन रहा

[1] Kathryn Hansen, Ground for play the nautanki theater of north india, p. 86

है। समाज को प्रगति के रास्ते चलने के लिए इस लोक कला ने हर संभव कोशिश की। इसके अध्ययन से इस समाज और संस्कृति को बखूबी पहचाना जा सकता है।

आज के समय में नौटंकी के जो आलेख उपलब्ध हैं उनकी उपलब्धता और प्रामाणिकता दोनों संदिग्ध है। इन आलेखों को नौटंकी के अखाड़ों के द्वारा लिखा जाता था, अखाड़े के बंद हो जाने से नौटंकी के तमाम आलेख तो नष्ट कर दिए गए या हो गए। इन आलेखों का कोई एक व्यक्ति प्रधान लेखक तो होता था और साथ ही अन्य कलाकार भी आलेख में सहयोग देते थे। इसलिए नौटंकी आलेख एक व्यक्ति विशेष की कृति से ज्यादा उस अखाड़े की कृति होती है। इस संदर्भ में रामनारायण अग्रवाल ने लिखा है कि "नौटंकी के आलेख अपने छंद विधान को लेकर विशिष्ट हैं। यही कारण है कि जो नौटंकी गायकी और संगीत और छंद-विधान नहीं जानता वह नौटंकी लेखन में असमर्थ साबित होगा।"[1] नौटंकी आलेखों का लेखन अन्य नाट्य-कृति से अलग है नौटंकी की प्रस्तुति कुछ विशेष छंदों के गायन पर आधारित है। इन छंदों की समझ नौटंकी लेखन की पहली शर्त है। कुछ दिन पूर्व लखनऊ की संगीत नाटक अकादेमी ने नौटंकी लेखन-कार्य का प्रयास करवाया लेकिन वह असफल रहा क्योंकि नौटंकी के आलेखों का लेखन कोई नौटंकी मे पारंगत कलाकार ही कर सकता है।

इस तरह देखा जाए तो नौटंकी आलेख अपने विशेष नाट्यशिल्प के बिना अधूरे हैं। आलेखों का स्वतंत्र साहित्यिक मूल्य तो है लेकिन नौटंकी से अलग नही। नौटंकी कला ने जनमानस को उतना ही आंदोलित किया जितना कि एक शिष्ट कला करती है। इसके महत्व को कैथरिन हैन्सन की इस बात से समझा जा सकता सकता है, वह लिखती हैं कि "With the introduction of expensive Devnagari printing

[1] राम नारायण अग्रवाल, नौटंकी का उदय, विकास और वर्तमान स्थिति, (सं.) लोकनाट्य नौटंकी कुछ प्रश्न, पृ. 54

in the 1880s, the *Sangit* (नौटंकी आलेख) entered the era of mass communication and become widely printed, bought and sold."[1] (1880 के दशक में महंगी देवनागरी छपाई की शुरुआत के साथ, सांगीत ने जन संचार के युग में प्रवेश किया और व्यापक रूप से मुद्रित, खरीदा और बेचा जाने लगा।) ये आलेखों का प्रभाव लोकजीवन में गहरा है। लोक समाज के लिए यह वह साहित्य है जिसको पढ़कर वह चेतना सम्पन्न भी होते हैं और स्वयं का मनोरंजन भी करते हैं।

2.3.6 नौटंकी के नाट्य मंच की तकनीक: रंगमंच की कला तकनीकी कला है। नौटंकी रंगमंच भी विभिन्न प्रकार के तकनीकी साधनों ने निर्मित हुआ है। रंगमंच का कलागत निर्माण उसके अन्य छोटे-बड़े उपदान करते हैं। भारतीय रंगमंच विशेषकर लोक रंगमंच एरीना थिएटर ही हैं, जिसमें गोल चौखटे के चारों ओर दर्शक नाटक को देखते हैं इसमें चाहे नाटक हो या तमाशा सर्कस। आरंभ में नौटंकी (ख्याल व भगत) में भी यही रंगमंच पाया जाता रहा। डॉ. नगेंद्र ऐरिना थिएटर के संदर्भ में लिखते हैं "भारतवर्ष में सारा लोकरंगमंच मूलतः रंग स्थल ही रहा है, नौटंकी में भी दर्शक चारों ओर बैठते हैं। लेकिन नौटंकी के आधुनिक समय का सर्वेक्षण किया जाए तो पाया जाता है कि नौटंकी का रंगमंच उस पारंपरिक तरीके का एरीना थिएटर नहीं रह गया जिसके चारों ओर दर्शक नाटक देखते हो और बीच में नृत्य कर्म किया जा रहा है अब यहां व्यवस्थित एक रंगमंच बन चुका है।"[2] नौटंकी की प्रस्तुति के लिए किसी खुली जगह में खुला मंच होता है। इसका स्टेज साधारण कोटि का, तख्तों को जोड़कर तैयार किया जाता है। तख्तों के चारो ओर से बांस-बल्ली सीधा लगाकर पर्दा टांग दिया जाता है। मंच पर रस्सी की सहायता से पर्दा को उठाया या गिराया जाता है। पहले

[1] Kathryn Hansen, Ground for play the nautanki theater of north india, p. 86
[2] डॉ. नगेंद्र, मानविकी पारिभाषिक कोश साहित्य खंड पृ. 25

नौटंकी में एक ही पर्दा से काम लिया जाता रहा लेकिन आज सुविधा और दृश्य के अनुसार चार-पांच पर्दे तक प्रयोग में लाए जाते हैं। मंच की साज-सज्जा, तकनीक पारसी रंगमंच से भी प्रभावित रही।

नौटंकी के मंच पर ही सभी संगीत वादक किनारे की तरफ बैठ कर अपने वाद्य यंत्र बजाते हैं। अभिनय करने वाला पात्र कई बार मंच पर बैठे संगीत वादकों को संबोधित करते हुए गायकी के अंत में गद्यात्मक संवाद बोल देते हैं। नौटंकी शुरू होने के लिए नगाड़ा बजता है। पात्र मंच पर आते हैं और फिर शुरू होती है नौटंकी की प्रस्तुति। नौटंकी खेलने का समय, विभिन्न अवसरों पर या मेला-उत्सव के समय साल के बारहों मास चलता है, अधिकतर अप्रैल से जुलाई तक और अक्टूबर से फरवरी तक कुछ ज्यादा ही। ग्रामीण समुदाय की कला होने के कारण वर्षा ऋतु में यह नहीं खेली जाती है। मेले आदि समूहिक स्थान इसके प्रदर्शन के मुख्य स्थान होते हैं। नौटंकी में दृश्य-बंध बनाने की पूरी गुंजाइश है। कृष्ण नरायण कक्कड़ ने लिखा है कि "...नौटंकी में दृश्य-बंध बनाने की भी एक रचनात्मक विधि हो सकती है।" वह एक उदाहरण द्वारा समझाने का प्रयास करते हैं कि कैसे एक दृश-बंध का निर्माण किया जाता है।

2.3.7 नौटंकी का रंगा (विदूषक): रंगा या जोकर या विदूषक नौटंकी का विशेष पात्र होता है। विदूषक शब्द संस्कृत नाटकों में मिलता है, जो सूत्रधार का भी कार्य करता है लेकिन नौटंकी के लिए जोकर शब्द आज प्रचालन में है। उत्कर्ष कलाकार इसे रंगा बोलते है। कहा जाता है कि नौटंकी के लिए रंगा इतना महत्वपूर्ण था कि इसके बिना नौटंकी की प्रस्तुति रद्द हो जाती थी। रंगा अगर जनता का पूर्ण मनोरंजन कराने में सक्षम है तो वह अच्छा और नामी जोकर माना जाता। यह रंगा अभिजात्य और समाज की बुराईयों पर व्यंग्य कस कर अपने दर्शकों का मनोरंजन करता और वह

सूत्रधार बनकर बीच-बीच में कहनी को समझने का कार्य भी करता। सिद्धेश्वर अवस्थी ने लिखा है कि “नौटंकी का एक और प्रबल पक्ष है रंगा, जो कि एक चरित्र होते हुए भी कोई चरित्र नहीं है; क्योंकि वह एक दैवीय शक्ति की तरह हर जगह पहुँच सकता है, शमशान में, राजा के जीवन में भी, रास्ते में भी; क्योंकि वह एक दृश्य से दूसरे दृश्य बदलने का संकेत करता है।”[1] यह मनोरंजन और कथ्य की गंभीरता दोनों से ही दर्शकों का परिचय कराता है। कथा का सूत्रधार भी रंगा ही होता है।

2.4 नौटंकी की शैलियाँ

नौटंकी में गीत, संगीत और नृत्य की प्रधानता होती है। इसी की प्रस्तुति विधान-से नौटंकी की शैलियाँ बनी हैं। उत्तर भारत के लगभग सम्पूर्ण क्षेत्र में खेले जाने वाली नौटंकी की कितनी शैलियाँ हैं ? इसका उत्तर दे पाना उतना ही कठिन है, जितना यह बता पाना कि भारत में कितने लोकनाट्य हैं ? और कौन सा लोकनाट्य है या सिर्फ वह गीतों का प्रदर्शन। इसी तरह नौटंकी स्थान संगीत परंपरा, गुरु परंपरा या किसी प्रयोगकर्ता द्वारा विकसित की गयी शैली तथा नौटंकी प्रशिक्षण के घराने के आधार पर नौटंकी प्रस्तुति में भिन्नता मिलती हैं इसे भी हम नौटंकियों की शैलियाँ मान सकते हैं। जैसे अमरोहा की नौटंकी में अमरोहा की गायकी का प्रभाव है। अमरोहा में सपेड़ा प्रस्तुति होती रही है उसका प्रभाव स्थानीय नौटंकी पर मिलता है। इसी तरह राजस्थान की की भरतपुर नौटंकी जिस पर एक तरफ ब्रज प्रदर्शन-संस्कृति का प्रभाव है तो वहीं राजस्थान की ख्याल गायकी का। इस तरह नौटंकी पूरे उत्तर भारत में फैली है जिसमें अपनी मनोरंजन परम्पराओं का वैविध्य है। इनमें बहुत सूक्ष्म अंतर है और शैली की आयु दीर्घ होती है वह इन नौटंकियों में नहीं मिलता। इस कारण इन

[1] सिद्धेश्वर अवस्थी, एक शक्तिशाली विधा पर संकट, लोकनाट्य नौटंकी कुछ प्रश्नरवीद्रनाथ बहोरे (.सं), पृ7 .

विविधताओं को शैली की वह मान्यता नहीं दी गयी जो मान्यता हाथरस और कानपुर घराने की नौटंकियों को मिली।

नौटंकी में जो अपनी संगीत परंपरा, संवाद अदायगी और भाषा आदि के कारण विभिन्नता मिलती है वह हाथरस और कानपुर शैलियों में वर्तमान है। नौटंकी की जन्मस्थली उत्तरप्रदेश रही है और इसके प्रमुख दो केंद्र रहे हैं हाथरस और कानपुर। यही नौटंकी रंगमंच की प्रमुख शैलियाँ भी रही हैं। हाथरसी शैली के जन्मदाता नत्थाराम शर्मा गौड़ और कानपुरी शैली के श्रीकृष्ण पहलवान हैं। प्रो. अब्दुल बिस्मिल्लाह शैली के स्थान पर 'स्कूल' शब्द को उचित मानते हैं।[1] शास्त्रीयता का पुट दोनों शैलियों में है विशेष अंतर सिर्फ संवाद अदायगी, संगीत संरचना और कुछ कलात्मक तकनीकी प्रयोगों को लेकर है। दोनों शैलियों में कुछ ख़ास भिन्नताएँ हैं। नारायण भक्त इन शैलयों के अंतर को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "नौटंकी में संगीत और गायन की प्रधानता होती है। हाथरसी शैली के जन्मदाता नत्थाराम शर्मा गौड़ और कानपुरी शैली के श्रीकृष्ण पहलवान हैं। दोनों शैलियों में कुछ ख़ास भिन्नताएँ हैं। हाथरसी शैली में गायन और स्वांगीय अभिनय की प्रधानता है। कानपुरी शैली में संवाद भी पद्य में ही होते हैं। इसमें नृत्य की भी प्रधानता होती है। हाथरस की नौटंकी को स्वांग एवं भगत भी कहा जाता है, जबकि कानपुरी शैली की नौटंकी को सिर्फ़ नौटंकी या तमाशा कहा जाता है।"[2] जबकि इन शैलियों की प्रस्तुति विधान-और विषय में अंतर और भी जिनकी चर्चा विस्तार से आगे की जाएगी। इन्हीं प्रस्तुतियों से प्रेरणा लेकर मध्यप्रदेश, राजस्थान और बिहार में नौटंकी खूब खेली जाती रहीं और इन सबने

---

[1] अब्दुल बिस्मिल्लाह, उत्तर आधुनिकता के दौर में, , पृ .69

[2], नारायण भक्त, मंच से उजड़ी मन में बसीः नौटंकी
www.abhivyaktihindi.org/natak/rangmanch/2009/nautanki.htm

अपनी स्थानीय संगीत शैली एवं गायकी के साथ अलग पहचान बनयी। राजस्थान में भारतपुर की नौटंकी मशहूर है। उत्तर प्रदेश में भी मथुरा, मेरठ और लखनऊ में नौटंकी का प्रदर्शन इन दोनों शैलियों के प्रचलन पर खूब हुए। बिहार में नौटंकी का प्रदर्शन उपरयुक्त दोनों शैलियों में होता रहा है। इसके अतिरिक्त वहाँ भिखारी ठाकुर ने एक अलग लोकनाट्य शैली तैयार की जिसे कुछ विद्वतजन नौटंकी की ही शैली मानते हैं। कुल मिलाकर ये सब अपनी-अपनी स्थानीय गायकी, छंद विधान, विषय और भाषा में प्रस्तुत होने पर भी मूल रूप से इन दोनों शैलियों का ही अनुसरण करते रहें।

2.4.1.नौटंकी की हाथरस शैली: हाथरस नौटंकी शैली की संगीत शास्त्रीयता प्रस्तुति का प्राण है। हाथरस शैली की गायकी इसकी पहचान है। इस शैली की तर्ज बहुत ही मौखिक थी, अभिनय और संगीत का सारा ज़ोर इस गायिकी की तर्ज पर दिया जाता है। यह तर्ज कानपुर की शैली में नहीं है। हाथरस शैली में प्रमुख रूप से नगाड़ा, ढोलक, हार्मोनियम, सारंगी ये चार साज ही होते हैं। हाथरस शैली में संवादों के बाद नगाड़े पर बड़े लम्बे-लम्बे टुकड़े, परन, आवृत्तियाँ और तिहाइयों का समावेश होता है। इसमें संगीत और गायन के साथ-साथ अभिनय होता है। कानपुर नौटंकी शैली की शाहजादी के तौर पर जानी जाने वाली गुलाब बाई के अनुसार हाथरस की शैली के गायन में थोड़ा ठहराव है जैसे चौबोला गया तो उसको ठहर के गाया। और कानपुर की शैली में जैसे आप बादशाह बने हैं तो आप जोशीले तरीके से बहरे तबील को गाया तो जो सामने पात्र खड़ा है उसने भी उसी जोश के साथ गाया। इसमें तान पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है। हाथरस शैली की नौटंकी में संवाद अदायगी शत-प्रतिशत पद्य में है। यह शैली ब्रज की रासलीला से प्रभावित होने के कारण नगाड़े में भी शास्त्रीय वादन शैली का प्रभाव है। हाथरस की नौटंकी को स्वांग एवं भगत भी कहा जाता है, जबकि कानपुरी शैली की नौटंकी को सिर्फ़ नौटंकी या तमाशा कहा जाता है।

प्रो. अब्दुल बिस्मिल्लाह ने हाथरस शैली की विशेषता बताते हुए लिखा है कि "हाथरस शैली में वार्तालाप पद्य में ही होता था। यह शैली ब्रज की रासलीलाओं से प्रभावित है। इसलिए हाथरस शैली में शास्त्रीयता का पुट अधिक है।"[1] यह अपनी गायकी से मनः स्थिति को समझाने का प्रयास करते हैं। वह किसी दृश्य के निर्माण के लिए अभिनय की आपेक्षा गायन के माध्यम से ज्यादा समझाने का प्रयास करते हैं। इसमें कलाकारों की गायकी ही विशेषकर दर्शकों को आकर्षित करती है।

इसमें मंच बहुत ही साधारण दर्जे का होता है कोई बनावट या 'डिजाइन' पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है। दो चार तख्तों को डाल कर मंच बना लिया जाता है। संगीत-वादक इसी मंच पर बैठते हैं। अभिनय का जो भी पक्ष करते हैं वह सभी इसी मंच पर किया जाता है। हाथरस और कानपुर दोनों शैलियों में छंद लगभग समान होते हैं लेकिन गायकी में काफी अंतर है।

2.4.2. नौटंकी की कानपुर शैली: कानपुर-शैली के आविर्भाव से जुड़ी एक घटना बताई जाती है। कहा जाता है कि एक बार नत्थाराम जी ने अपनी पूरी मंडली के साथ कानपुर में प्रदर्शन किया। प्रदर्शन के अंत में उन्होंने चुनौती दी कि ऐसा स्वांग कोई और नहीं कर सकता। उनकी चुनौती को बद्री खलीफ़ा ने स्वीकार करते हुए घोषणा की एक महीने के अंदर इसी जगह ऐसा स्वांग प्रस्तुत किया जाएगा, जिसमें १२ नगाड़े एक साथ बजेंगे। पूर्व निश्चित दिन स्वांग का प्रदर्शन किया गया, जिसे देखने के लिए भारी जन-समुदाय उमड़ पड़ा। मंच के बीच एक विशाल नगाड़ा रखा गया और उसके चारों ओर १२ नगड़िया रखी गईं। नगड़ची मैकू उस्ताद ने नगाड़े पर चोट की, जिसकी आवाज़ से पूरा वायुमंडल गूँज उठा और नौटंकी शुरू हो गई। बाद में श्री कृष्ण

[1] अब्दुल बिस्मिल्लाह, उत्तर आधुनिकता के दौर में, पृ. 69

पहलवान ने अपनी नौटंकी कंपनी की स्थापना की जो कानपुर शैली की सबसे बड़ी नौटंकी के रूप में विख्यात एवं लोकप्रिय हुई।

कानपुर शैली में गायन के साथ ही आंगिक अभिनय पर भी ज़ोर दिया जाता है और छंदों को नक्कारा की लय और ताल के साथ लोक प्रचलित धुनों में गया जाता है। इस शैली के नगाड़ा वादन में ज्यादातर लोक प्रचलित लयों का ही प्रयोग होता है जैसे- दादरा, कहरवा, दीपचंदी आदि। कानपुर की नौटंकी शैली में गायकी, अदाकारी तथा नृत्य पर लखनऊ संगीत शैली का प्रभाव है। गुलाब बाई ने कानपुर शैली की गायकी को बहुत शुद्धता के करीब ले गई । दादरा, ठुमरी आदि कानपुरी शैली की शास्त्रीयता का ही प्रमाण है लेकिन गाने में पूर्ण शास्त्रीयता का निर्वाह नहीं हो पाया है। दीप्ति प्रिय महरोत्रा के अनुसार “कानपुर शैली में संवाद अभिनय और पोशाक मंच की साज-सज्जा पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। संगीत का आधार शास्त्री रहा पर हाथरस की तुलना में हल्कापन आ गया।”[1] इन्हीं कुछ संरचनागत विशेषताओं आधार मान कर नौटंकी की कानपुर शैली की पहचान की जाती है। इस शैली को और अधिक स्पष्ट समझने के लिए प्रो. अब्दुल बिस्मिल्लाह के कानपुरी नौटंकी संबंधी मत को देखते हैं। इन्होंनें कानपुर शैली की विशेषता बताते हुए लिखा है कि “कानपुर शैली में गायन बहुत सीधा-सपाट, संवाद भावानुरूप और लोक प्रचलित धुनों का समावेश होता है। हाथरस शैली में परन, टुकड़ों तथा तिहाई के जवाब में कानपुर शैली में किर्रा का इस्तेमाल किया जाता है।”[2] इस तरह कानपुर शैली में गायन की भिन्नता है लेकिन गायन के साथ अन्य उपादानों में भी कानपुर की नौटंकी हाथ रस से भिन्न है। कलागत प्रयोग कानपुर शैली की नौटंकी में अधिक हुए। नौटंकी विषय और मंच सज्जा ने

[1] दीप्ति प्रिया महरोत्रा, नौटंकी मालिका गुलाब बाई, पृ. 83
[2] अब्दुल बिस्मिल्लाह, उत्तर आधुनिकता के दौर में, पृ. 73

कानपुर नौटंकी को एक नया आयाम दिया। कानपुर की नौटंकी हाथरस की आपेक्षा अधिक व्यावसायिक थी जिस कारण इस शैली का प्रसार भी अधिक हुआ।

दोनों ही शैलियों में लगभग छंद समान है बस गायकी में अंतर है। दोनों में ही गुरु-शिष्य परंपरा से यह आगे बढ़ती है। कथानक भी लगभक समान ही हैं लेकिन कानपुर शैली में समय सापेक्ष कथानकों में बदलाव किए हैं जैसे स्वाधीनता आंदोलन से समय स्वाधीन चेतना और आंदोलन के प्रतिरोधी विचारों वाली नौटंकियों की प्रस्तुति आधिक की।

निष्कर्ष:

नौटंकी के विधागत विवेचन से स्पष्ट होता है कि नौटंकी एक ऐसा लोक रंगमंच है जो परंपरागत प्रदर्शनकारी शैलियों (भगत, स्वांग एवं ख्याल, सपेड़ा आदि) के सम्मिश्रण से निर्मित अपने समाज में नई लोक विधा है। इससे भी नया है इसका नाम 'नौटंकी', नहीं तो इसे स्वाँग या सांगीत नाम से जाना जाता था। नौटंकी शैली का प्रचलन 17वीं शताब्दी से माना जाता है लेकिन इससे भी पूर्व लगभग एक हज़ार ईस्वी में नौटंकी जैसी लोक कला के सूत्र मिलते हैं। नौटंकी से पहले हिन्दी प्रदेश (विशेषकर जहाँ नौटंकी अधिक प्रचलित रही) में स्वांग, भगत और ख्याल जैसे लोक कलाओं का प्रचलन था। इन्हीं की विरासत लेकर नौटंकी विधा का विकास हुआ। नौटंकी रंगमंच में नौटंकी शब्द पर तमाम विवाद हैं। कोई इसे नौटंकी नाम की शहजादी के कारण मानता है तो कोई नौटंकी का नाट्य शब्द से संबंध जोड़ता है। जो भी नौटंकी नाम इस रंगमंच का बहुत बाद में पड़ा। इसके युवा अवस्था तक इसे सांगीत नाम से ही इसके कलाकार और दर्शक जानते थे। नौटंकी नाम बाद में पड़ा और इस नाम को कानपुर की नौटंकी शैली ने मशहूर किया।

नौटंकी में पौराणिक आख्यानों की अपेक्षा वीरता, प्रेम और रोमांच की कहानियाँ प्रस्तुत की जाती हैं। लेकिन बदलते समय के साथ नौटंकी के विषय दर्शक को शास्त्रीयता से दूर समाजिक जीवन से जोड़ते हैं। नौटंकी ने स्वाधीनता आन्दोलन के समय 'बहादुर लड़की''वीर बालक' जैसी नौटंकियाँ करके राजनीतिक चेतना का परिचय दिया। कानपुर के श्रीकृष्ण पहलवान की नौटंकी 'वीर बालक' स्वाधीन चेतना की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। क्रूरता के प्रति यही प्रतिरोध इस कला को विशिष्ट बनाता है। 'वीर बालक' नौटंकी पर गाँधीवादी दर्शन का प्रभाव है। जिसमें आज़ादी के लिए आत्मबलिदान की भावना अनुस्यूत है। इसके माध्यम से राष्ट्रीय समर्पण, शौर्य और पराक्रम जगाने का कार्य किया।

नौटंकी में गीत-संगीत की प्रधानता होती है इसीलिए इसकी तुलना पश्चिम के ओपेरा से की जाती है। गायकी आधार पर इसकी शैलियाँ मिलती है जिसमें प्रमुख दो शैली हैं-नौटंकी की हाथरस शैली और कानपुर शैली। हाथरसी शैली के जन्मदाता नत्थाराम शर्मा गौड़ और कानपुरी शैली के श्रीकृष्ण पहलवान हैं। कुछ विद्वान इन शैलियों के लिए 'स्कूल' या घराना शब्द का प्रयोग करते हैं। लोक विधा होते हुए भी शास्त्रीयता का पुट दोनों शैलियों में है अंतर सिर्फ संवाद अदायगी और संगीत संरचना को लेकर है। कुल मिलाकर ये सब अपनी-अपनी स्थानीय गायकी, छंद विधान और भाषा में प्रस्तुत होने के करण भिन्न-भिन्न शैलियों को जन्म देती हैं।

नौटंकी रंगमंच लोक-रंगमंच का वह रूप है जो बिना किसी ताम-झाम के साधारण तख्तों से बने रंगमंच पर खेला जाता है। इसका प्रमुख वाद्य यंत्र नगाड़ा है। नगाड़े का प्रयोग नौटंकी विधा के लिए सर्वाधिक प्रचलित है। इसकी छंद योजना में मुख्यतः दोहा, चौबोला, दौड़, आदि छंद मुख्यतः प्रयोग में लाए जाते हैं। इनमें दोहा

शास्त्रीय छंद है लेकिन दोहा की भी एक लोक परंपरा रही है। भाषा की दृष्टि से देखें तो हिंदुस्तानी भाषा में नौटंकी आलेख मिलते हैं लेकिन संवाद और बोलचाल की भाषा स्थानीय होती है।

इस तरह हिन्दी रंगमंच की यह लोकधारा है जो जनमानस के मनोरंजन से लेकर उनके लिए संचार माध्यमों का काम भी करती है। आधुनिक रंगमंच से यह नौटंकी कहीं भी कमजोर नहीं जान पड़ती। बस रूढ़िग्रस्त अवश्य हुई है लेकिन वह इस रंगमंच की समस्या नही है। यह समस्या कला-प्रयोग को लेकर है। इस तरह हिन्दी प्रदेश का लोकप्रिय लोक नाटक नौटंकी अपने इतिहास और वर्तमान में जीवित है।

<u>अध्याय: तीन</u>
कानपुर शैली का नौटंकी रंगमंच

3.1 कानपुर शैली की नौटंकी का उद्भव और विकास

नौटंकी की कानपुर शैली के उद्भव से जुड़ा किस्सा हमने पिछले अध्याय में बताया कि कैसे पं. नत्थाराम जी की शर्त पर एक प्रतियोगिता हुयी जिसमें बद्री खलीफ़ा ने हिस्सा लिया जिस कारण नौटंकी की एक शैली का उद्भव हुआ जिसे कानपुर नौटंकी शैली के नाम से जाना जाता है। बद्री खलीफ़ा ने चल-प्रचलित हाथरस शैली से अलग वाद्ययंत्रों की अधिकता में ऐसा रंगमंच प्रस्तुत किया कि वह पूरे क्षेत्र में प्रचलित हो गया। इससे स्पष्ट होता है कि कानपुर शैली की नौटंकी का उद्भव हाथरस शैली के बहुत बाद का है। श्रीकृष्ण पहलवान इसी प्रतियोगिता का हिस्सा थे, बाद में इन्होनें अपनी नौटंकी कंपनी की स्थापना की जो कानपुर शैली की सबसे बड़ी नौटंकी के रूप में विख्यात एवं लोकप्रिय हुई।[1] बाद में इन्होंनें एक नहीं चार-चार मंडलियाँ बनाई और उत्तर भारत के अलग-अलग क्षेत्र में नौटंकी प्रस्तुत करने जाने लगे। इससे पूर्व श्रीकृष्ण पहलवान पहलवानी करते थे और व्यवसाय के रूप में एक दर्जीखाना खुलवा रखा था, जिसमें हाथरस से आने वाली नौटंकी के जैसे कपड़े बनते थे। इसके बाद श्रीकृष्ण पहलवान ने नौटंकी मंडलियों के साथ एक अपना प्रिंटिंग प्रेस 'श्रीकृष्ण पहलवान पुस्तकालय' नाम से खोला जिसमें नौटंकी के आलेख छाप कर बेचते थे। कानपुर शैली की नौटंकी प्रमुखतः कानपुर, लखनऊ, इलाहाबाद, सीतापुर, लखीमपुर, शाहजहाँपुर, हरदोई और इधर पश्चिमी उत्तर प्रदेश के खड़ी बोली क्षेत्र में लोक प्रिय रही। इसकी लोक प्रियता ही इस रंगमंच को बिहार के विभिन्न हिस्सो तक ले गयी। श्रीकृष्ण पहलवान की

[1] नारायण भक्त, मंच से उजड़ी मन में बसीः नौटंकी, अभिव्यक्ति (वेब)

इस नई शैली (कानपुर शैली) के उद्भव के साथ यह भी देखना है कि कानपुर की कौन सी परिस्थितियाँ थी जिनमें नौटंकी को हवा और पानी मिला जिस कारण वह सरसब्ज होकर एक भिन्न शैली के रूप में स्थापित हुयी।

नौटंकी से पहले कानपुर और उस पूरे क्षेत्र में ख्याल और अमरोहा गायकी की सांग-सपेड़ा (नौटंकी की तरह ही एक गायकी प्रधान विधा है जो निम्न समझेजाने वाली जातियाँ अपने मनोरंजन के लिए प्रस्तुत करती थीं) लोक परंपरा का प्रचलन था। कानपुर नौटंकी शैली के पुरोधा श्रीकृष्ण पहलवान बताते हैं कि “नौटंकी से पहले कानपुर में ख्याल गाये जाते थे और उनके अखाड़े हुआ करते थे। सिद्धा गुरु और बंदी खलीफा इन्हीं अखाड़ों के मशहूर व्यक्ति थे”[1] इसके साथ ही सम्पन्न समझे जाने वाले घरों या ऊंची समझी जाने वाली जतियों में नाच कराने की परंपरा थी। कहा जाता है मुंडन, जनेऊ-शादी आदि उत्सवों में नृत्य (इस नृत्य को वह पारंपरिक समाज ‘रंडी का नाच’ नाम से जनता है) कराना रईसी की पहचान होती थी। गणेश शंकर विद्यार्थी (1890-1931 ई.) ने इस नृत्य-परंपरा का बहुत विरोध किया था और सरकार से इसे बंद कराने की मांग की थी।[2] ये सब प्रदर्शन कानपुर और उसके आस-पास क्षेत्र में पहले से चले आ रहे थे। इसी समय हाथरस की नौटंकी जिसे सांगीत नाम से जाना जाता था उसका प्रदर्शन कानपुर में मेला आदि में होने लगा। सुरेश सलिल ने लिखा है कि “हिन्दी क्षेत्र के सभी लोकनाट्य शैलियों की वंश परंपरा जगाधरी के वंशीलाल के स्वांगों, कामवान, भरतपुर की नाट्य-शैली अथवा अमरोहा की गायकी में से किसी न किसी से जुड़ती है।”[3] इस तरह जो हाथरस या उसकी प्रतिस्पर्धा में कानपुर की

---

[1] (उद्धृत) राम नारायण अग्रवाल, सांगीत एक लोकनाट्य परंपरा, पृ. 126

[2] राम नारायण अग्रवाल, सांगीत एक लोकनाट्य परंपरा, पृ. 125

[3] सुरेश सलिल उत्तर प्रदेश की लोकनाट्य परंपरा और नौटंकी, पृ. 16

नौटंकी का आविष्कार हुआ वह इन लोक प्रदर्शनकारी कलाओं से जुड़ता है। उपर्युक्त सभी लोक-धाराएँ हमारे जनजीवन में पहले से बहती आ रही थीं इनके सम्मिलित रूप से नई कला का जन्म हुआ। इस कला की लोकप्रियता इतनी बढ़ी कि लोगों के फैशन में नौटंकी शामिल होने लगी। कहा जाता है पंडित नत्थाराम गौड़ प्रत्येक श्रावण मास के मेले मे आकार प्रदर्शन किया करते थे। यह प्रदर्शन इतना लोकप्रिय हो गया कि इसमें पहनने वाले चटक एवं भड़कीले कपड़े आम लोग तक पहनने लगे थे।[1] इस तरह हाथरस की नौटंकी का प्रदर्शन कानपुर में खूब होता था और जो व्यक्ति परिवार की रईसी साबित करने के लिए विशेष समुदाय की स्त्रियॉ का नृत्य कराते थे वह अब हाथरस की नौटंकी (सांगीत) कराने लगे। इसी परिवेश में एक नयी शैली की नौटंकी का आविष्कार हुआ जिसे हम 'कानपुर शैली' के नाम से जानते हैं।

कानपुर शैली की विख्यात प्रस्तुति मैकू उस्ताद और बंदी खलीफा के नेतृत्व में हुयी। त्रिमोहन उस्ताद और श्रीकृष्ण पहलवान ने यहाँ नौटंकी का अड्डा बना लिया वैसे हथरसी नौटंकी की प्रस्तुति यहाँ पहले से ही होती थी लेकिन कानपुर शैली की नौटंकी के प्रणेताओं ने इसे एक अलग शैली विशेष में की नौटंकी का केंद्र बना दिया। राम नारायण अग्रवाल नौटंकी की कानपुर शैली का उदयकाल 1910 ई. के आसपास मानते हैं। इस समय तक कानपुर एक औद्योगिक नगर के रूप में विकसित हो रही थी। 1857 की स्वाधीनता की पहली क्रांति में कानपुर भी लाल हुआ था। ब्रिटिश सरकार ने यहाँ छांवनी कि स्थापना की। विशेषकर जो औद्योगिक नगरी के रूप में कानपुर विकसित हुआ इसका लाभ कानपुर की नौटंकी शैली को भी मिला। रजनीकान्त तिवारी कनपुरी नौटंकी के विकास में कानपुर शहर के संदर्भ में लिखते हैं कि "उस समय कानपुर की प्रसिद्धि एशिया के मैनचेस्टर के रूप में थी। समृद्धि और सम्पन्नता के

[1] राम नारायण अग्रवाल, सांगीत एक लोकनाट्य परंपरा, पृ. 125

साथ-साथ एक बड़ी मजदूर आबादी का बसेरा भी था कानपुर...गणेशशंकर विद्यार्थी, मौलाना हसरत मोहानी, गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, मुंशी प्रेमचंद की उपस्थिति से कानपुर में राष्ट्रीय चेतना का प्रवाह बह रहा था इन सबका लाभ नौटंकी को मिलना था और वह भरपूर मिला भी।"[1] कानपुर में नौटंकी के प्रदर्शन के साथ-साथ साहित्य से जुड़ी जमीन होने के कारण नौटंकी कथ्य और तकनीक दोनों को नई दिशा मिली। इसी तथ्य को राम नारायण अग्रवाल लिखते हैं कि "कानपुर की औद्योगिक नगरी में नया स्वाँग (नौटंकी) देखने का आकर्षण मजदूरों में बहुत अधिक होता था और यहाँ के प्रदर्शन से काफी धन भी मिलता था।"[2] इसके उपरांत नौटंकी ग्रामीण क्षेत्रों में रईसों के यहाँ भी गयी वहाँ से इसकी जनमानस में लोकप्रियता और अधिक बढ़ी।

1910 ई. के आसपास नौटंकी की कानपुर शैली का सूत्रपात हो गया था। पहली प्रस्तुति का श्रेय बंदी खलीफा, मुल्लाराय, मैकु उस्ताद आदि को जाता है। उसके बाद यह ज़िम्मेदारी श्रीकृष्ण पहलवान ने ली। श्रीकृष्ण पहलवान ने चार नौटंकी मंडलियाँ शुरू की जो कानपुर के आसपास काफी लोकप्रिय रही।[3] इससे नौटंकी के व्यावसायिक होने की संभावनाएँ भी तेज़ हुईं। इन्हीं की देखा-देखी में 'ख्याल' गायकी के कलाकारों ने तमाम नौटंकी मंडलियों की स्थापना की। श्रीकृष्ण पहलवान ने एक परिपक्व कलाकार की तरह कला और व्यवसाय में संतुलन बनाए रखा। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंनें नौटंकी का प्रारम्भ कोरस-गायन से किया। नौटंकी आलेख में बहरे-तबील जैसे छंदों का प्रयोग शुरू किया। मंच-सज्जा को पारसी रंगमंच से बहुत अधिक जोड़ने काम किया जैसे नेपथ्य के निर्माण में पर्दों का प्रयोग, प्रकाश

---

[1] रजनीकान्त शुक्ल, नौटंकी को अपना अंदाज़ बदलना होगा, कल का हिंदुस्तान,) ब्लॉग(, 8 जुलाई2016

[2] राम नारायण अग्रवाल, सांगीत एक लोकनाट्य परंपरा, पृ. 126

[3] सुरेश सलिल उत्तर प्रदेश की लोकनाट्य परंपरा और नौटंकी, पृ. 19

व्यवस्था आदि। श्रीकृष्ण पहलान ने ही हाथरस शैली से प्राप्त पद्यात्मक परंपरा को गद्य की तरफ मोड़ा, मतलब संवादों में पद्य की जगह पर गद्य का प्रयोग भी होने लगा। इन्हीं के नेतृत्व में नौटंकी में धार्मिक पौराणिक विषयों के साथ ही सामाजिक एवं युगीन राष्ट्रीय चेतना का समावेश हुआ। सुरेश सलिल ने लिखा है कि "कानपुर की नौटंकी ने इस क्षेत्र में भी पहलकदमी की, और इस तरह लोकनाट्य को देशकाल का एक सशक्त तर्क मिला। श्रीकृष्ण पहलवान का सबसे पहला सांगीत आर्य समाज के सुधारवादी कथानक पर आधारित था। उसका नाम था 'धर्मवीर हकीकत राय'। आर्य समाज उन दिनों प्रगतिशील सामाजिक आंदोलनों का मंच था। सामाजिक चेतना के साथ-साथ, उस शुरुआती दौर में ही पहलवान जी ने नौटंकी को राष्ट्रीय स्वाधीनता की जनाकांक्षा के बीच ला खड़ा किया।"[1] इन्होंने जालियावाला बाग हत्याकांड पर 'खूनेनाहक' नौटंकी की रचना करवाई। इस तरह अपनी विकास यात्रा में कानपुर की नौटंकी ने राष्ट्रीय चेतना के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

कानपुर नौटंकी के दूसरे सबसे बड़े पुरोधा त्रिमोहन लाल हुए। त्रिमोहन कन्नौज के निवासी थे नौटंकी की शिक्षा हाथरस के नौटंकी मास्टर इंदरमन के सानिध्य में हुयी थी। ये 1920 ई. के आसपास आए थे और अपनी कलात्मक प्रतिभा के कारण नौटंकी का नया शिखर निर्मित किया। इन्होंने नौटंकी में इतना कुछ किया कि इनकी तुलना श्रीकृष्ण पहलवान से की जाने लगी। त्रिमोहन ने नौटंकी के अभिनय-पक्ष और संवादों की अदायगी में कुछ एक क्रांतिकारी परिवर्तन किया था। "उन्होनें संगीत से बोझिल धीमी नाट्य-गति को संप्रेषण के मार्ग की एक बाधा के रूप में देखा और इसके बर्चस्व को कम करते हुए उन्होनें आंगिक चेष्टाओं को और एक्सन प्रधान भंगिमाओं को

---

[1] सुरेश सलिल, उत्तर प्रदेश की लोकनाट्य परंपरा और नौटंकी, पृ. 20

उभारा”[1] इस तरह त्रिमोहन ने विधागत प्रयोग करके नौटंकी को प्रचारित-प्रसारित किया। त्रिमोहन का सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह है कि उन्होंनें नौटंकी में स्त्रियों के प्रवेश के लिए द्वार खोले। गुलाब बाई का प्रवेश त्रिमोहन के ही सनिध्य में हुआ था। त्रिमोहन ने नौटंकी के नाट्य आलेख स्वयं लिखे या दूसरों से लिखवाए। इनकी एक मशहूर नौटंकी है ‘सांगीत पुकार उर्फ जहाँगीर न्याय’ इसका विशेष महत्व इतिहास और लोक संवेदना का समन्वय है। इस प्रकार कानपुर नौटंकी का यह दूसरा चरण त्रिमोहन उस्ताद के कार्यों से सम्पन्न होता है।

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में कानपुर शैली की नौटंकियों की छोटी से लेकर बड़ी तक तमाम मंडलियाँ व्यवसाय कर रही थी। दीप्ति प्रिया महरोत्रा ने इन दिनों के नौटंकी प्रचलन और इसके लिए उपजाऊ परिस्थियों के संदर्भ में लिखा है कि “1930-1940 के दशकों में नौटंकी की ख़ूब धूम मची। बड़े-छोटे प्रत्येक मेले में नौटंकी होती थीं- चाहे स्वाँग, तमाशा या खेल कहलाई जाती। उत्तर भारत में हर साल सैकड़ों मेलों का रिवाज था। बहुत से मेलों की पहचान सीमित इलाकों तक थी। कुछ एक थे जिनका पैमाना ज्यादा विस्तृत था- जैसे कानपुर, बहराइच और देवी पाटीन के मेले। इसमें हर साल हजारों की तादाद में भीड़ इकट्ठा हो जाती थी। बहराइच मेला सालार मसूद ग़ाज़ी के उर्स पर लगता था। देवी पाटन मेला दशहरे पर लगता।” यही बाज़ार मेले नौटंकी प्रदर्शन का केंद्र हुआ करते थे। इन्हीं गुलाब बाई के जीवन पर पुस्तक लिखते हुए दिखाया है कैसे गुलाब बाई दूर-दूर तक मेलों में नौटंकी करती थीं। इस समय यह नौटंकी ‘छोटी जातियों’ के रोजगार का साधन होने के कारण गाँव-गाँव में इनके कलाकार उत्पन्न हो गए। इसकी लोकप्रियता आसमान चढ़ गयी। इन्हीं में से एक गाँव से निकली थी गुलाब बाई नौटंकी की मलिका बन गईं। गुलाब बेड़ियाँ जनजाति से

[1] सुरेश सलिल, उत्तर प्रदेश की लोकनाट्य परंपरा और नौटंकी, पृ. 21

आती हैं। इन्होंनें नौटंकी की कानपुर शैली को कलात्मक और व्यसायिक दोनों तरह से समृद्ध किया। देश से विदेश तक में नौटंकी के प्रदर्शन इन्होंनें किए।

बीसवीं सदी के उत्तरार्ध से लेकर सदी के अंतिम समय तक नौटंकी की कलात्मक अभिव्यंजना दम तोड़ गयी। इसे व्यवसाय की तरह देख कर धनाढ्यों ने अपनी ग्रिप में ले लिया। कानपुर उत्तर प्रदेश एक बड़ा औद्योगिक शहर है। घर से दूर मजदूरों के मनोरंजन का साधन यह नौटंकी थी। नौटंकी के नाम पर आजकल कानपुर में आर्केस्ट्रा अधिक चलता है नौटंकी कम ही बची है।

3.2 कानपुर नौटंकी शैली में अभिव्यक्त विषय

कानपुर शैली की नौटंकी में अभिव्यक्त विषय लगभग वही रहे जो हाथरस या अन्य नौटंकी शैलियों में प्रचलित थे। अभिव्यक्त विषयों को लेकर शैलियों में कोई विशेष अंतर नही रहा। कानपुर शैली अधिक व्यावसायिक रही और उसकी प्रतियोगिता पारसी रंगमंच से अधिक रही इस कारण इस शैली में कुछ विषय भिन्नता नौटंकी की अन्य शैलियों से मिलती है। वैसे तो नौटंकी का मुख्य रस श्रृंगार है जिसमें संयोग और वियोग दोनों पक्षों का समावेश है शृंगार के सहायक रस के रूप में वीर रस को भी इस मंच पर स्थान उतना ही स्थान मिलता है लेकिन कानपुर शैली की नौटंकी सिर्फ इन्हीं दो रसों तक सीमित नहीं है, सामाजिक आवश्यकता के सभी रस इसमें में मिल सकते हैं। इस शैली में सामाजिक संदर्भ अधिक मुखर होकर प्रस्तुत हुए हैं। स्वाधीनता आंदोलन में चाहे वह राष्ट्रीय चेतना का प्रसार एवं साम्राज्यवादी सत्ता का विरोध हो या सामाजिक पक्ष सभी कानपुर शैली में प्रस्तुत किए गए। इसका कारण था कानपुर नौटंकी अधिक लोकप्रिय थी और इसके कलाकार गाँधीवाद, आर्यसमाज और स्वाधीनता आंदोलन से प्रभावित थे। अपने विकास कार्य के दौरान कानपुर शैली की

नौटंकी की कड़ी प्रतिस्पर्धा पारसी रंगमंच से रही, इसलिए विषय और तकनीक दोनों में एक दूसरे से आदान-प्रदान हुआ। नौटंकीकारों ने पारसी मंच की कथाओं की भांति अपने आलेखों में मुख्य कथा के साथ हास्य की सृष्टि करने के लिए कथा में पारसी मंच के समान ही सहायक कथा को जोड़ना भी आरंभ कर दिया और पारसी रंगमंच की तमाम विभिन्न तकनीकों को नौटंकी से जोड़ा।

नौटंकी की कानपुर शैली में तत्कालीन सामाजिक अभिव्यक्ति इसकी अपनी विशेषता है। इसका संदर्भ तत्कालीन सामाजिक संदर्भ से रहता था। इसमें शृंगार से परिपूर्ण कहानियाँ तो परंपरा से मिली थी लेकिन कानपुर ने तत्कालीन घटनाओं एवं परिस्थितियों के आधार पर नौटंकी लेखन अधिक कराया। इसमें इतिहास के राणाप्रताप नौटंकी हो चाहे टीपू सुल्तान सभी के तत्कालीन सामाजिक माएने रहे हैं। नौटंकी ही नही यह अधिकतर सभी लोकनाट्यों की विशेषता है कि उनके विषय देश-काल और समाज के अनुसार परिवर्तित रहे हैं। कानपुर शैली के कलाकारों में इसकी प्रधानता है। यह बदलाव नौटंकी के आलेखों में भी देखने को मिलता है। कानपुर के छक्कन उस्ताद की अधिकतर नौटंकियाँ सामाजिक विषयों से जुड़ी हुयी थीं। उनकी नौटंकी शीर्षक से ही नौटंकी की सामाजिक उपादेयता साबित होती है। उनकी नौटंकियों में 'ग़रीब की ईद' 'प्रेम का तीर' और 'सच्ची कुर्बानी' आदि महत्वपूर्ण हैं। अन्य सामाजिक नौटंकी देखे तो 'नादान बालम' और 'ननद-भौजाई' आदि नौटंकी हैं जिनमें स्त्री समस्याओं के अन्तर्मन की बात अभिव्यक्त होती है। नौटंकी में गाय जाने वाले गीत उसकी अभिव्यक्ति पुरुष सत्ता का विरोध समाहित रहा। दर्शक रूचि के अनुसार रास-रोमांस की प्रणय कहानियों (लैला मजनू, सीरी फरहाद आदि) पर भी नौटंकी खेली जाती है। 'राणाप्रताप' 'अमर सिंह राठौर' जैसी ऐतिहासिक विषयों पर तो नौटंकी खेली ही गयी श्रीकृष्ण पहलवान ने हकीकत राय, महारानी पद्मिनी, शिवाजी

और वीरमती जैसी ऐतिहासिक चरित्रों पर नौटंकी की। इन प्रस्तुतियों में आर्य समाज के दर्शन का प्रभाव अधिक है। इन नौटंकियों में वैदिक सभ्यता की प्रसंशा है । कानपुर शैली की विशेषता सामाजिक और स्वाधीनता आंदोलन जैसे विषयों से संबंध इसका अधिक मात्रा में है, जो उसे अन्य नौटंकी शैलियों से अलग करता है। 'वीर बालक', 'वीर हकीकतराय' (श्रीकृष्ण पहलवान), 'बहादुर लड़की' (गुलाब बाई) आदि नौटंकियाँ स्वांधीनता आंदोलन के प्रसार के फलस्वरूप उपजी हैं। प्रो. अब्दुल बिस्मिल्लाह लिखते हैं कि "श्रीकृष्ण पहलवान की 'शहीद भगत सिंह' नामक नौटंकी का 'पलना गीत' तत्कालीन युवा वर्ग के लिए जागरण गीत बन गया था।"[1] इन नौटंकियों की प्रस्तुति भी शानदार तरीके से होती थी। जो तत्कालीन परिस्थितियों की दृष्टि से बहुत उत्तेजक कही जा सकती है। जावेद अख्तर खाँ 'शहीद भगत सिंह' नौटंकी के 'मैला आँचल' के दृश्य को उद्धृत करते हुए लिखते हैं, "किर्र र र र घन घन धड़ाम धा, धड़ाम धा! नौटंकी का नगाड़ा बोल रहा है।... कौन खेला होगा? क्या कहा मस्ताना भगत सिंह! वाह!... दाहिने हाथ में पिस्तौल है और बाएँ हाथ में बेल के बराबर क्या है ? बम! अरे बाप! हाँ, जिसका जो हथियार! किर्र र र घन-घन-धड़ाम-घा! अजी बेटा हम मादरे-बतन भारत का/हमें डर नहीं फाँसी सूली का...। किर्र-र-र-धड़ाम-धड़ाम! भगत सिंह नाच रहा है। नाचकर स्टेज के एक कोने से दूसरे कोने तक जाता है।"[2] नौटंकी में कोई भी विषय से संबन्धित कहानी हो प्रस्तुति का अंदाज़ यही है। यही पर याद आते हैं ब्रेख्त। इसी तरह श्री कृष्ण पहलवान का 'बलिया का शेर' बलिया निवासी चिंटू पांडे के आत्म बलिदान की कथा कही गई है। इस नौटंकी में हिंदू मुस्लिम एकता पर काफी बल दिया गया है। यह मात्र इसका इकलौता उदाहरण नहीं है अपितु तमाम

[1] अब्दुल बिस्मिल्लाह, उत्तर आधुनिकता के दौर में, पृ. 74
[2] जावेद अख्तर खाँ, हिन्दी रंगमंच की लोकधारा, पृ. 35-36

नौटंकियाँ स्वाधीनता आंदोलन और अंग्रेजों की आलोचना का कार्य कर रही थी। इसी के साथ कानपुर की नौटंकी स्वतंत्रता सेनानियों के जीवन पर आधारित थी जिसका जिक्र द्वतीय अध्याय में विस्तार से किया जा चुका है। अन्याय और नफरत के खिलाफ लड़ने की प्रेरणा देने वाली नौटंकी 'कहानी फूलनदेवी की' कानपुर शैली की नौटंकी है।

3.3 कानपूर नौटंकी शैली के रंगमंचीय उपादान

रंगमंच कलाओं का संगम होता हैं। गीत-संगीत, साहित्य, अभिनय मंच सज्जा आदि सब इन्हीं कलात्मक क्षमताओं द्वारा ही संभव है। यही सब उपादान इस रंगमंच को आकार देते हैं।

3.3.1. संगीत-विधान एवं गायन: नौटंकी और नाटक में अंतर है और यह अंतर उसकी भाषा (texure) को लेकर है। नौटंकी की अदाकारी में एक विशेष प्रकार का गीत-संचार, गायकी अर्थात संवादों के स्वरलापों से संभव है। कानपुर नौटंकी में संगीत विधान में गायकी बहुत सीधी सपाट है। रामनारायण अग्रवाल को इस संदर्भ में उद्धृत करना उचित जान पड़ता है, उन्होनें लिखा है कि "आरंभ में ब्रजक्षेत्र के गायकों ने ही जाकर कानपुरी नौटंकी को जमाया था। कनपुरी नौटंकी के आरंभिक गायकों में उस्ताद चुन्नीलाल अलीगढ़ जिले के थे और उनके साथ इस विधा के अनेक गायक कानपुर गए थे। परंतु बाद में नौटंकी में स्त्रियों का प्रवेश हो जाने पर गायकी का ढंग बदलना वहाँ के लिए अनिवार्यता हो गई।"[1] राम नारायण अग्रवाल कानपुर की गायकी में स्त्रियों के प्रवेश को नकारात्मक दृष्टि से देखते हैं। ऐसा सही नहीं स्त्रियों के प्रवेश से कानपुर की गायकी में एक नया संचार आया। गुलाब अपनी गायकी के लिए प्रसिद्ध हैं। उनका

[1] राम नारायण अग्रवाल, सांगीत एक लोक नाट्य परंपरा, पृ .218

दादरा बहुत मशहूर है “नदी नारे न जाव श्याम पाइयाँ पड़ूँ” जिसे हिन्दी सिनेमा ने भी प्रसारित किया।

कानपुर शैली की नौटंकी में लोक प्रचलित ध्वनियों का समावेश होता है। इसमें लोक गीत और लोक संगीत को विशेष तवज्जो दी जाती है। गुलाब आदि ने ब्रज में गाये जाने वाले गीतों को खूब गाया। जिस तरह हाथरस शैली के परन-टुकड़े तथा तिहाई नगाड़े की धुन पर बजते हैं उसी तरह कानपुर शैली में किर्रा का इस्तेमाल किया जाता है। कानपुर शैली भी ब्रज की रासलीला से प्रभावित रही इसलिए नगाड़े में शास्त्रीय वादन शैली का प्रभाव आया। राम नारायण अग्रवाल ने लिखा है कि “कानपुरी नौटंकी में सीधी गायकी व धुनों का सरलीकरण कर लिया गया तथा गायन के साथ-साथ अभिनय के द्वारा भाव-व्यंजना पर यहाँज़ोर दिया जाने लगा।”[1] यह पारसी रंगमंच के प्रभाव में घोर कलात्मकता को त्याग कर सामान्य स्थिति में लाने का ज़ोर रहा। अभिनय की भूमिका हाथरस शैली की अपेक्षा कानपुर में अधिक है। लेकिन गायकी की एक खास शैली का विकास किया है। नौटंकी में करीब 150 लोक धुनो का मिश्रण किया गया है लेकिन कानपुर शैली में 50-60 लोक धुने ही पायी जाती हैं।[2] सत्य यह है कि आज कानपुर नौटंकी में भी 10-12 धुने ही प्रयोग की जाती हैं 50 या 60 धुने एक समय की बात रही होगी आज की नहीं। आज के समय में आर्केस्ट्रा और अन्य पाश्चात्य धुने भी नौटंकी में मिलने लगी हैं।

कानपुर शैली की नौटंकी की गायकी में सीधे-साधे कथ्य की आवश्यकता अनुसार स्वरों पर एवं कथ्य के भाव पर जोर अधिक दिया जाता है। गायकी, अदायगी और नृत्य पर लखनऊ घराने के संगीत की अधिक छाप है। कानपुर की नौटंकी का

[1] राम नारायण अग्रवाल, सांगीत एक लोक नाट्य परंपरा, पृ .297

[2] आनंद कुमार मिश्र, लोकनाट्य नौटंकी कुछ प्रश्न, पृ. 42

नगाड़ा अपने किर्रे और धौंस की गमक के लिए दूर-दूर तक मशहूर है। नौटंकी एक संगीत प्रधान रंगमंच है। इसमें संवाद पद्य में अधिक होते हैं लेकिन कानपुर की नौटंकी शैली में संवाद पद के साथ साथ गद्यात्मक हैं। कानपुर नौटंकी शैली में इस गद्यात्मकता की शुरुआत श्रीकृष्ण पहलवान ने की थी, वह बीच-बीच में कुछ संवाद गद्य में भी बोल दिया करते थे। यह गद्यात्मकता नौटंकी में कानपुर शैली से आई है बाद में इसमें अन्य शैलियों को भी प्रभावित किया। ऐसे गद्यात्मक संवादों के लिए नौटंकी में ठेठर शब्द प्रचलित था जो थिएटर का ही अपभ्रंश लगता है। दादरा, ठुमरी आदि इसकी शास्त्रीयता का ही प्रमाण है लेकिन गाने में पूर्ण शास्त्रीयता का निर्वाह नहीं हो पाया है। गुलाब बाई ने इसे बहुत हद तक अपनाया है। कानपुर की नौटंकी शैली में गायकी, अदाकारी तथा नृत्य पर लखनऊ संगीत शैली का प्रभाव है।

3.3.2 नगाड़ा एवं अन्य वाद्य यंत्र: नगाड़ा नौटंकी के संगीत का प्रमुख वाद्य यंत्र है। इस वाद्ययंत्र से नौटंकी की आवाज बहुत दूर तक जाती है। कानपुर शैली की नगाड़ा ध्वनियों को यहाँ लिख कर समझा पाना संभव नहीं है। इसे संगीत की भाषा में ही समझा जा सकता है फिर भी यहाँ कुछ बिन्दुओं की लिखित रूप में चर्चा की जा सकती है। कानपुर शैली में भी नगाड़ा नौटंकी विशेष वाद्य यंत्र है। सुरेश सलिल नगाड़ा की परंपरा और कानपुर शैली की नौटंकी में उसके प्रयोग पर टिप्पड़ी करते हुए लिखते हैं कि “यह सच है कि हिन्दी क्षेत्र की लोकनाट्य शैलियों में नक्कारे का प्रयोग पहले से चला आ रहा था, लेकिन उसकी शक्ति को पहले-पहल कानपुर में ही पहचाना गया। नगाड़ा-वादन का जो ऐश्वर्य कानपुर की नौटंकी ने दिया और प्रतिदान में नक्कारे ने जो ऐश्वर्यमयी गमक कानपुर की नौटंकी को दी, वह अपने-आप में बेमिसाल

है”[1] इस तरह नगाड़ा नौटंकी के लिए प्राण है। इस शैली की नौटंकी की पहचान नगाड़े पर निर्भर है। कानपुर शैली का जिस प्रतियोगिता से उदय हुआ उसमें नक्कारे का बहुत बड़ा योग है। इस शैली में भी नगाड़े की ध्वनि से संवाद प्रारम्भ होता है और नगाड़े की ध्वनि पर ही संवाद खत्म होता है।

कानपुर शैली के नगाड़ा वादन में ज्यादातर लोक प्रचलित लयों का ही प्रयोग होता है जैसे- दादरा, कहरवा, दीपचंदी आदि। कानपुर शैली का जिन कलाकारों के हाथों जन्म हुआ, उसमें प्रमुख तिरमोहन उस्ताद, बंदी खलीफा, मुल्ला राय और मैकू उस्ताद हैं। कानपुर शैली का आरंभ इन्होंनें ही अपने हैरतअंगेज़ प्रस्तुति से 1910 के करीब किया था। इस प्रस्तुति में नगाड़ा वादन प्रमुख था, तभी से कानपुर की नौटंकी में विशेष वाद्य यंत्र नगाड़ा बन गया। इसके अतिरिक्त जुम्मन खाँ, वशीर खाँ आदि हैं। कहा जाता है कि मैकू उस्ताद एक साथ नगाड़े के साथ बारह नगड़िया बजाते थे। इसी विरासत को त्रिमोहन मास्टर और राशिद मास्टर ने आगे बढ़ाया। इस शैली के नगाड़े की किर्रा और धौंस बहुत स्वरीली होने के कारण मशहूर है। तिरमोहन और छिद्दन का नगाड़ा नौटंकी की दुनिया में तमाम दंतकथाओं का साहित्य लिए हुए है। तिरमोहन उस्ताद के बारे में कहा जाता कि वह दो नहीं सोलह डंडियों (चोप) से नगाड़ा बजाते थे। सर्कस की तरह उछाल-उछाल का नक्काड़ा वादन उनकी विशेषता थी।

नौटंकी की कानपुर शैली की प्रस्तुति में परमुखतः से नगाड़ा तथा सारंगी, ढोलक और हारमोनियम का ही प्रयोग होता है। हारमोनियम दोनों हाथो से बजाई जाती है पैर से उसका पंखा चलाया जाता है। नगड़िया को जो नगाड़े से आकार में छोटी पर, उसी आकृति की होती हैं उन्हें हर वक़्त गरम करके रखा जाता है।

---

[1] सुरेश सलिल, उत्तर प्रदेश की लोकनाट्य परंपरा और नौटंकी, पृ17 .

3.3.3 छंद-विधान एवं भाषा: इसका छंद-विधान हाथरस शैली से अलग नहीं हैं लगभग समान छंदों का ही प्रयोग होता है। इसकी छंद योजना में मुख्यतः दोहा, चौबोला, दौड़, बहरे तबील आदि छंद मुख्यतः प्रयोग में लाए जाते हैं। इनमें दोहा शास्त्रीय छंद है लेकिन दोहा की भी एक लोक परंपरा रही है। कानपुर शैली में इन छंदों की गायकी में भिन्नता है जिसे यहाँ लिखकर नहीं समझाया जा सकता। लेकिन राम नारायण अग्रवाल के शब्दों में कहें तो- "कानपुर वालों ने हाथसी धुनों के गायन के स्थान पर छंदों का काव्यात्मक पाठ (रेसीटेशन) के ढंग में ढाल कर उन्हीं सरल रूप दे दिया। छंद तो उनके वही थे परंतु उनकी गायन शैली सीधी-सादी कर दी गई और संगीत की दमदारी को गौड़ करके उन्होनें इन धुनों के माध्यम से पारसी ढंग के अभिनय को उभारने का प्रयत्न किया। अतः आज कानपुर नौटंकी में संगीत का सौन्दर्य गौण है और अभिनय की प्रधानता है जब कि हाथरसी स्वाँग में गायन सर्वोपरि है।"[1] उपरयुक्त उद्धरण में यह तो सच है कि कानपुर शैली की गायकी सीधी-सपाट है लेकिन वह छंद बद्ध है। कानपुर शैली का सौन्दर्य कम नही है उसकी गायकी की एक अपनी शैली है। जो जनसाधारण से अधिक जुड़ी हुयी है। इस संगीत शैली पर लखनऊ की गायकी का प्रभाव है जिसका जिक्र ऊपर भी किया गया है।

कानपुर शैली की नौटंकी फारसी थिएटर से हाथरस की अपेक्षा कानपुर की नौटंकी अधिक प्रभावित रही इस कारण उसका छंद विधान भी प्रभावित हुआ। पारसी रंगमंच का एक छंद है 'तर्जे थियेटर' जो नौटंकी में आ गया। इसे ही कानपुर शैली ने बाहरी छंदों में ग्रहण किया। कानपुर शैली में इसे ही ठेठर नाम से जानते हैं। तर्जे थियेटर का पहला गीत श्रीकृष्ण पहलवान ने शहीद भगत सिंह नामक नौटंकी में लिखा था- "जुग जुग जीवो कुँवर हजारी/ अमर होय यश किर्ति ततुम्हारी/ गुण गाये संसार

[1] राम नारायण अग्रवाल, सांगीत एक लोक नाट्य परंपरा, पृ .218

शत्रु दल को दलना।"[1] लेकिन यह नौटंकी में प्रयोग दुबोला छंद जैसा ही है। कानपुर नौटंकी की तत्कालीन स्थिति ऐसी है कि नौटंकी के प्रस्तुतिकरण में फिल्मी गीतों की प्रधानता बढ़ गयी है। दो दृश्यों के बीच में होने वाले नृत्य मे फिल्मी गीत ही गाये जाते हैं।

सभी लोकनाट्यों में स्थानीय भाषा-बोली की प्रधानता रहती है, इस कारण नौटंकी की भाषा क्षेत्रीय आम बोल-चाल की है। ब्रज क्षेत्र में यह देशज ब्रज में, पूर्वी क्षेत्र बिहार-छत्तीसगढ़ में स्थानीय बोलियों का प्रयोग होता है। इन स्थानीय भाषा-बोलियों के बावजूद नौटंकी में उर्दू और हिन्दुस्तानी भाषा का विशेष प्रचलन है। कानपुर शैली में अरबी फारसी के शब्दों की अधिकता है जिसे हम उर्दू भाषा कहते हैं। शेर, गज़ल और कव्वाली आदि छंद-विधान अरबी-फ़ारसी से है। इसमें लोक भाषा तो प्रधान होती ही है इस लिए हिंदी के लोक छंद लावनी, रसिया, दादरा, सोहनी, चौबोला, दौड़ और बरहत गीत आदि का प्रयोग प्रचुर मात्र में होता है।

3.3.4 अभिनय एवं नृत्य: अभिनय नौटंकी में सामान्य लोक नाटकों की तरह है लेकिन यह संगीत प्रधान लोक नाटक है इसलिए इसमें गायन के साथ ही अभिनय भी होता है। कानपुर नौटंकी शैली में आंगिक अभिनय और शैलियों से अधिक है। भारत के अधिकतर लोक नाटकों में यथार्थवादी अभिनय की पूर्ण उपेक्षा है। नौटंकी के कलाकार ग्रामीण कलाकार होते हैं वह परंपरागत तारीके से गायकी सीखते हैं वही उनका अभिनय है। कानपुर शैली में हाथरस की अपेक्षा अभिनय पर बल दिया गया लेकिन यह पश्चिम के यथार्थवादी अभिनय से बहुत दूर है। कानपुर शैली में पद्य के साथ-साथ जब गद्य को भी स्थान मिलने लगा तो अभिनय की चमक रंगमंच पर अधिक होने

[1] (उद्धृत) रामनारायण अग्रवाल, सांगीत एक लोक नाट्य परंपरा, पृ.143

लगी। इसमें अभिनेता आता है गायन करता है और छंद के बीच में जो समय मिलता है उसमें अभिनय करता है। इस तरह गायन ही नौटंकी का प्रमुखता से अभिनय है। अभिनेता मंच पर प्रतीकात्मक, पशुओं का अभिनय, नारी चरित्र का अभिनय, हास्य, मूक अभिनय एवं विभिन्न मुख और आंगिक मुद्राएँ बनाकर अभिनय किया जाता है।

इसप्रकार कहा जा सकता है कि कानपुर शैली की नौटंकी में गायन के साथ आंगिक अभिनय सभी रूपों पर गायकी के साथ बल दिया जाता है। लोकनाट्यों से अलग अभिनय की कोई विशिष्ट शैली तो नहीं है लेकिन संगीत प्रधान विधा में अभिनय की परंपरा कानपुर शैली की नौटंकी में मिलती है, यह स्पष्ट है।

नृत्य: नृत्य कानपुर नौटंकी का अभिन्न हिस्सा है। नृत्य के साथ ही नौटंकी की प्रस्तुति पूर्ण होती है। यह नृत्य दृश्य परिवर्तन अंतराल में होता है। आज जैसे टेलीविज़न पर 'ब्रेक' होता है वैसे ही नौटंकी में दृश्य के अंतराल में नृत्य होता है और इस नृत्य पर लोक न्योछावर स्वरूप कलाकार को रुपये भेंट करते हैं। कानपुर नौटंकी शैली पर लखनऊ के संगीत घराने का अधिक प्रभाव है। इस कारण लखनऊ घराने के कथक नृत्य एवं मुजरा प्रस्तुति का प्रभाव नौटंकी की कानपुर शैली पर पड़ा। पहले तो यह संगीत के साथ एक सलीके से प्रस्तुत होता था बाद में यह नृत्य ही नौटंकी नाट्य को काल के गाल में दबाकर इसने नौटंकी पर एकाधिकार जमा लिया। एक समय में नौटंकी रंगा या कलाकारों की कथाओं के हिसाब से पसंद की जाती थी आज नौटंकी में एक समाज है जो इस नृत्य के लिए पसंद करता है। ब्रज क्षेत्र का 'ब्रिजवासी नृत्य' नौटंकी का पारंपरिक नृत्य हुआ करता था। अब इस नृत्य की कोई शैली विशेष नहीं बची है। नौटंकी की कानपुर शैली को इस नृत्य की अधिकता ने ही निगल जैसा लिया।

3.3.5 कानपुर शैली के नौटंकी आलेख: कानपुर शैली में नौटंकी लेखन का प्रचलन 1910 ई के आसपास से विद्वान मानते हैं। पहला प्रकाशित नौटंकी आलेख कानपुर शैली का ही था। विषय की दृष्टि से नौटंकी की इन दोनों बड़ी शैलियों में कोई विशेष अंतर नहीं है। अंतर लेखन को लेकर है। विषय का अंतर बहुत कम ही है, कानपुर नौटंकी में धार्मिक-पौराणिक विषयों के साथ ही तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक संदर्भों पर भी नौटंकी लिखी गईं। आनंद कुमार मिश्र के अनुसार हाथरस और कानपुर नौटंकी शैली के आलेखों में कोई विशेष अंतर नहीं है, प्रमुख अंतर गायकी में है- "कानपुर शैली में सरल साधारण गायन के साथ ही पर्शियन नाट्य-शैली का मिश्रण मिलता है, जो काफी हद तक दर्शकों को प्रभावित करता है।"[1] कानपुर शैली के आलेखों में गद्य संवादों का प्रभाव अधिक है। इस संदर्भ में राम नारायण अग्रवाल ने लिखा है कि "उस समय (कानपुर नौटंकी शैली से पूर्व) सब कुछ गायन में ही होता था परंतु 20 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में कानपुरी नौटंकी के साथ स्थिति बदल गई और पारसी मंच की नकल पर गद्य संवादों का, जिन्हें ड्रामा कहा गया था, जोर बढ़ गया।"[2] इस नौटंकी लेखन में सवादों को गद्य का रूप भी दिया जाने लगा। इन आलेखों में छंदों के बीच-बीच में गद्यात्मक संवाद भी होते थे। गायन के साथ गद्य में संवाद लिखने की विशेषता

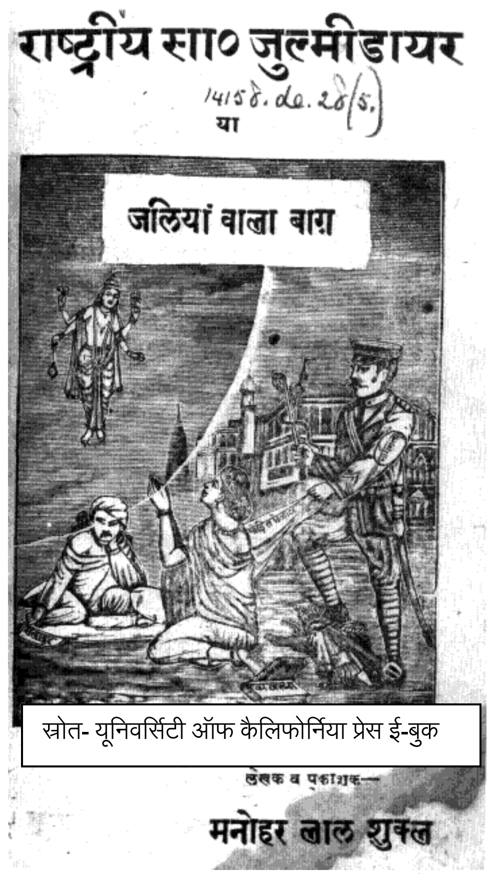

स्रोत- यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस ई-बुक

[1] आनंद कुमार मिश्र, नौटंकी का वर्तमान और भविष्य,लोकनाट्य नौटंकी कुछ प्रश्न (.सं) , पृ41 .
[2] राम नरयण अग्रवाल, सांगीत एक लोक नाट्य परंपरा, पृ 182 .

कानपुर नौटंकी शैली की है। कानपुर शैली के आलोखों विशेषता बताते हुए रजनीकान्त शुक्ल ने लिखा है कि “मुख्य कथा के साथ हास्य प्रधान उपकथा का प्रचलन शुरू किया। पद्यात्मक संवाद के साथ-साथ गद्य में भी संवादों का चलन शुरू हुआ। इस लोक नाटय में उन्होंने देशभक्ति और समाज सुधार वाले खेल जोड़े।”[1] इस तरह कानपुर शैली के प्रारम्भिक प्रयोगकर्ताओं ने नौटंकी के आलेखों का परंपरा से आगे विस्तार किया। यह विस्तार एक तो पद्य के साथ-साथ गद्य में लिखने का था दूसरा कथाओं को तत्कालीन संदर्भों से जोड़ा।

कानपुर की नौटंकी में नौटंकी के साथ-साथ आलेखों का भी व्यवसाय हुआ। इस व्यवसाय को खेमचंद यदुवंशी के इस उद्धरण से समझा जा सकता है जिसमें वह कानपुर के श्रीकृष्ण पहलवान के संबंध में लिखते हैं “उन्हीं दिनों श्रीकृष्ण पहलवान आर्य समाज से प्रभावित होकर उससे जुड़ चुके थे, जिसकी विचारधारा से प्रभावित होकर पहला सांगीत- ‘वीर हकीकतराय’ लिखा जिसकी लाखों पुस्तकें कानपुर के रेल बाज़ार स्थित आर्य समाज ने छपवाकर जनता में बाँटी गईं। इसके बाद सान 1912 में ‘चंचला कुमारी’ ‘महारानी पद्मिनी’ और छत्रपति शिवाजी नामक सांगीत लिख कर स्वयं छपवाकर व्यावसायिक रूप से बेचने का कार्य किया।”[2] इस तरह कानपुर की नौटंकी के साथ साथ ही आलेखों का भी व्यवसाय होता था। बाद में इन्हीं श्रीकृष्ण पहलवान ने कंपनी बंद करके अपने लिखे नौटंकी आलेखों का व्यवसाय करने लगे थे। कहा जाता है त्रिमोहन ने नौटंकियाँ 200 से अधिक लिखी या दूसरो के लिखे आलेखों के कॉपीराइट खरीद लिए। इस शैली में आलेख पर विशेष ज़ोर दिया जाता था। इसका कारण था कानपुर स्कूल की नौटंकी पारसी रंगमंच की प्रतिस्पर्धा में लोक विधा के

---

[1] रजनीकान्त शुक्ल, नौटंकी को अपना अंदाज़ बदलना होगा, कल का हिंदुस्तान,(ब्लॉग) ,2016 जुलाई 8

[2] खेमचंद यदुवंशी, ‘कानपुरी नौटंकी के उन्नायक थे श्रीकृष्ण पहलवान’, ‘कला वसुधा’ , अक्तूबर-दिसंबर 2018 पृ. 142

साथ साथ लोकप्रिय नाट्य विधा भी थी इसकारण नए नूतन आलेखों ड्रामे कराने पर विशेष ज़ोर रहता था। फलस्वरूप नौटंकी आलेखों का लेखन बढ़ा। ये नौटंकी आलेख श्रीकृष्ण पहलवान, त्रिमोहन आदि कभी-कभी स्वयं लिखते अधिकतर आलेख लेखक का दायित्व किसी मझे हुए कलाकार को देते थे। कलाकार से उसके कॉपीराइट खरीद लेते थे। नौटंकी के आलेखों में वैसे भी उर्दू का प्राधान्य रहा है। नौटंकी लेखन में हरिश्चंद्र के पिता को पिदर और बेटे के लिए पिसर जैसे शब्दों का प्रयोग किया जाता रहा है। लोकनाटकों की भाषा आमजन मानस जुबान से ली गई होती है लेकिन नौटंकी के चूँकि आलेख लिखे जाते थे वह भी शिक्षित व्यक्तियों द्वारा तो भाषा साहित्यिक भाषा के करीब पहुँच जाती है। कानपुर के नौटंकी लेखक उर्दू फारसी पढ़े-लिखे व्यक्ति थे इस कारण उस भाषा प्रयोग किया।

नौटंकी लेखन का सबसे पहला अखाड़ा त्रिमोहन लाल के यहाँ से शुरू होता है। इन्होंनें अपने यहाँ यासीनखाँ नामक उर्दू शायर को नौटंकी लिखने के लिए नियुक्त किया था। इन आलेखों में लेखक अपना नाम कहीं न कहीं लिख ही देता था जैसे शायरी में होता है। कानपुर नौटंकी आलेखों के दूसरे सबसे बड़े प्रणेता श्री कृष्ण पहलवान हैं। श्री कृष्ण पहलवान ने कुछ नौटंकी स्वयं लिखीं और अधिकतर नौटंकी आलेखों के कॉपीराइट खरीदें या फिर पैसे देकर नौटंकी आलेखों का लेखन कार्य कराया। इनकी मंडली के नौटंकी लेखक का नाम लक्ष्मीनारायण था। लक्ष्मीनारायण की लिखी हुई सबसे प्रसिद्ध नौटंकी 'आंख का जादू' है, जिसका कॉपीराइट श्रीकृष्ण पहलवान के पास था इसीलिए आलेख की प्रति पर श्री कृष्णपहलवान का नाम लिखा रहता है। श्रीकृष्ण पहलवान ने कानपुर नौटंकी के प्रारम्भिक दिनों में ही अपना छापाखाना खोला था जिसमें नौटंकी आलेखों छापवाते थे और उन्हें पास के नगरों और बाज़ारों मेलों में बेचते थे। इन्हें एक खरीद एक तरफ तो आम जनमानस करता था,

देखी हुयी कहानी को पढ़कर वह रस-रंजन करता था। इन आलेखों दूसरी खपत छोटी-छोटी नाट्य मंडलियों के द्वारा होती थी। ये छोटे कस्बों और गाँव की नौटंकी मंडलियाँ इन आलेखों खरीद कर इनका मंचन करती थी। इस तरह कानपुर शैली के नौटंकी आलेख भी भी लोकप्रिय रहे। आज उत्तर भारत मेलों और बाज़ारों में ये नौटंकी आलेख सर्वाधिक कानपुर शैली के मिलेगें, जिनपर श्रीकृष्ण पहलवान का बड़ा सा फोटो छपा होता है। इस फोटो को देखकर आम लोग नौटंकी खरीदते हैं।

3.3.6 कानपुरी नौटंकी का मंच: जैसे नौटंकी की सभी शैलियों का मंच खुला प्रकार का, साधारण तख्तों को जोड़कर तैयार किया जाता है वैसे ही कानपुर शैली का स्टेज है, लेकिन कानपुर ने पारसी रंगमंच से नाट्य तकनीकों को अधिक ग्रहण किया। इसमें पर्दों का प्रयोग किया जाता है जिसमें चित्रकारी दृश्य-विधान के अनुसार होती है। हंडा (पेट्रोमेक्स) और बाद में बिजली की जैसे साधनों से प्रकाश व्यवस्था उपयोग सर्वप्रथम कानपुर नौटंकी के श्रीकृष्ण पहलवान ने किया। इस शैली पर्दे, बिछवाई झालर ड्राप सीन का इसमें नाटक की भांति उपयोग होता है। कानपुर की नौटंकी में अब पारसी रंगमंच की भाँति चमत्कार उत्पन्न किया जाने लगा है। कानपुर शैली की प्रस्तुतियों में आलेख का दृश्य-विभाजन और दृश्य-विधान का बड़ा ध्यान रखा जाता है । इन दृश्यों के बीच नृत्य और संगीत की प्रधानता वर्चस्व करती रही।

3.3.7 विदूषक या रंगा या जोकर: विदूषक की भूमिका को पूर्व अध्याय में रेखांकित किया जा चुका है। कानपुर की नौटंकी शैली में यह विदूषक नौटंकी का संहारक तत्व साबित हुआ। हाथरस की नौटंकी में विदूषक मंडली का कोई बड़ा कलाकार या फिर स्वयं नौटंकी लेखक हुआ करता था वह नौटंकी के सूत्रधार के साथ ही बीच-बीच में व्यंग्य के द्वारा वर्तमान दृश्य पर टिप्पड़ी करता था लेकिन कानपुर शैली में उसने

उपरोक्त दोनों भूमिकाएँ तो निभाई किन्तु इसमें रंगा या जोकर अधिकतर नौटंकी मंडली का मालिक हुआ करता है। इस कारण उस पर व्यवसाय का दबाव बना रहा, पारसी रंगमंच से प्रतिस्पर्धा होने के कारण मनोरंजन की प्रधानता बढ़ती गयी और इस रंगा के कारण नौटंकी में गंभीरता जाती रही। हाथरस शैली में रंगा के महत्व को स्वीकार करते हुए रामनारायण अग्रवाल लिखते हैं कि “परंतु बाद में कानपुर के नौटंकीकारों पर पारसी रंगमंच का ऐसा रंग चढ़ा कि वे उसके अंधानुकरण पर उतर आए नवीनता की झोंक में उन्होनें नौटंकी के स्वरूप में कई ऐसे परिवर्तन कर डाले जो इस मंच के स्वभाव तथा परम्पराओं के अनुकूल नहीं थे। इन परिवर्तनों में एक रंगा को भी उसके महत्वपूर्ण पद से च्युत कर दिया।”[1] यह रंगा मुख्य कथा के बीच में समय अधिक लेने लगा और उसमें मनोरंजन का स्तर सेक्सुअल परिधि में समाने लगा। इसका उदाहरण कानपुर में प्रचलित एक दो नौटंकी मंडलियों में देखा जा सकता है जो सिर्फ आर्केस्ट्रा बन कर रह गयी है। लेकिन एक समय था कानपुर की नौटंकी में विदूषक कहानी के बीच कथा को समझाते हुये गाँव के जमीदार और ‘ऊंची जाति’ के शोषण के खिलाफ ऐसे तंज़ भी कसते थे।

3.4 कानपुर नौटंकी शैली के प्रमुख कलाकार

विशाल फ़लक पर व्याप्त इस लोक कला के हजारों कलाकार हैं जिन्होंनें नौटंकी को एक रंगमंच कला के रूप में आकार देने में अपना सम्पूर्ण जीवन लगा दिया। इसमें से कुछ कलाकार ऐसे भी जिन्होंनें नौटंकी के लिए अपना सर्वस्व (व्यक्तिगत संपत्ति, सामाजिक आलोचनाएँ आदि) त्यागकर कला से जुड़े रहें। कुछ स्त्री कलाकारों ने सामाजिक जड़ता को तोड़ते हुए नौटंकी की कानपुर शैली को एक नयी ऊंचाई दी और

[1] राम नारायण अग्रवाल, नौटंकी का उदय, विकास और वर्तमान स्थिति, (सं.) लोकनाट्य नौटंकी कुछ प्रश्न, पृ. 54

बदले में हमारे 'भद्र समाज' ने एक 'अभद्र' नाम दिया। इन सभी कलाकारों का इस रंगमंच को बनाने में अभूतपूर्व योगदान रहा। इन सभी कलाकारों की भूमिका को रेखांकित कर पाना एक स्वतंत्र अनुसंधान की मांग करता है। लेकिन हम इस लघु शोध-प्रबंध में कानपुर शैली के उन प्रमुख कलाकारों का जिक्र करेगें जिन्होंनें इसे प्रारम्भ करके एक दिशा दी।

3.4.1 त्रिमोहन लाल: त्रिमोहन उस्ताद जो कन्नौजी भाषा में तिरमोहन हो गया और उस्ताद उनके नौटंकी ज्ञान के कारण। ये कन्नौज निवासी थे, अपनी युवा अवस्था में नत्थाराम शर्मा गौड़ की स्वाँग (नौटंकी) मंडली में शामिल हो गए थे। इस कारण नौटंकी कला का प्रशिक्षण हाथरसी नौटंकी (जो हथरसी स्वाँग नाम से प्रचलित था) अखाड़े से हुआ। त्रिमोहन वादन, गायन एवं अभिनय और नृत्य तीनों में पारंगत थे। नग्गड़ा वादन के उस्ताद थे। इनकी लोकप्रियता का कारण इनके नगाड़ा वादन की कला थी जिसमें इन्हें महारत हासिल थी। उन्नीस सौ चालिस के आसपास इन्होंनें मन्नीलाल के साथ मिलकर अपनी नौटंकी मंडली 'तिरमोहन मन्नीलाल नौटंकी कंपनी' नाम से खोल ली।[1] हाथरस शैली से प्रशिक्षित तिरमोहन उस्ताद कानपुर नौटंकी शैली को एक आकार देने वालों में से प्रमुख हैं।

चित्र: **त्रिमोहन लाल**
स्रोत: यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस ई-बुक

इनके बारे में कहा जाता है कि ये 6 चोब (नगाड़ा बजाने की लकड़ी) से नग्गड़ा

[1] डॉ. रमेश तिवारी विराम, कन्नौज नौटंकी के महारथी कलाकार त्रिमोहन, कला वसुधा, अंक पृ. 136

बजाते थे, दो हाथ में बाकी चार हवा में रख के कारस्तानी दिखाते थे। अपने नगाड़ा वादन में पूर्णतः लय, ताल आरोह अवरोह का ध्यान रखते थे।[1] त्रिमोहन स्थानीय देवी फूलमाती माता के भक्त थे इसकारण वह नौटंकी शुरू करने से पहले फूलमाती वंदना करते थे जो उन्होंनें स्वयं लिखी थी। त्रिमोहन की सबसे लोकप्रिय नौटंकियों में 'राजा हरिश्चंद्र' रही। इसके साथ ही 'लैला मजनू', 'शीरी फरहाद', 'मलखान समर', 'रायखुदा दोस्त सुल्तान', आदि इनकी चर्चित नौटंकियाँ हैं।

नौटंकी में त्रिमोहन उस्ताद ने कई बड़े प्रयोग किए जिसकी वजह से कानपुर शैली की नौटंकी परंपरागत नौटंकी से अलग पहचान बना कर लोकप्रिय हुयी। सर्वप्रथम इन्होंनें नौटंकी की प्रस्तुति के लिए संगीत के क्षेत्र में नगाड़े के महत्व और भूमिका का विस्तार किया। हाथरस शैली की नौटंकी में मुख्य वाद्ययंत्र सारंगी होती है लेकिन इन्होंनें नगाड़े में प्रयोग करके इसे प्राधानता दी जो बाद में कानपुर नौटंकी शैली की पहचान बन गया। दूसरा सबसे बड़ा परिवर्तन नौटंकी के संवादों में किया। नौटंकी के संवाद पद्य में होते थे, त्रिमोहन ने पारसी रंगमंच की तर्ज इन संवादों के बीच-बीच में गद्यात्मक संवादों का प्रयोग प्रारम्भ किया। नौटंकी आलेख में इन्होंनें पद्यात्मक संवादों के बीच बीच में गद्यात्मक संवाद भी लिखना प्रारम्भ किया। त्रिमोहन ने नौटंकी का दायरा बड़ा करने के लिए स्वांग, पारसी थिएटर और परंपरागत साहित्य से कथानक उठाते थे।

तीसरा सबसे क्रांतिकारी काम इन्होंनें किया- नौटंकी कला में स्त्रियों का प्रवेश करा के। कानपुरशैली की विख्यात कलाकार गुलाब बाई को त्रिमोहन ने ही नौटंकी में प्रवेश दिया था। इससे पूर्व नौटंकी की प्रस्तुति में स्त्री की भूमिका पुरुष पात्र ही निभाते

[1] वही 136

थे। लेकिन त्रिमोहन ने क्रांतिकारी कदम उठाकर गुलाब बाई को नौटंकी के लिए प्रशिक्षित किया। इसके बाद नौटंकियों में स्त्री प्रवेश के द्वार खुल गए। रांनारायण अग्रवाल ने लिखा इनके बारे में लिखा है कि "त्रिमोहन लाल ने कानपुर परंपरा की नौटंकी मंडली बड़ी धूमधाम से चलाई थी और नक्कारा वादन के रूप में उनकी बहुत ख्याति थी। वह एक सफल मंडली-संचालक थे। उन्होनें कानपुरी शैली को नयी दिशा देने में उसे पारसी रंगमंच से जोड़ने का यत्न किया। यही उनका इस क्षेत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य है। नौटंकी के मंच पर महिलाओं का प्रवेश सर्वप्रथम इन्होंनें ही कराया।"[1] इस तरह त्रिमोहन उस्ताद नौटंकी के प्रयोगकर्ता कलाकार और धावक हैं।

बाद में गुलाब बाई ने इनकी मंडली छोड़ दिया। कहा जाता है कि गुलाब बाई के छोड़ने के बाद इनकी लोकप्रियता घट गयी। फलस्वरूप पैसे की तंगी का भी सामना करना पड़ा। एक तरफ तो आर्थिक तंगी से जूझ ही रहे थे दूसरी तरफ इनके मित्र और साथी कलाकार यासीन की 1957 में मृत्यु से टूट ये गए। 1963 में कानपुर की नौटंकी शैली के सितारे ने अंतिम साँस लेकर दुनिया को अलविदा कह दिया।

3.4.2 श्रीकृष्ण पहलवान: नौटंकी की कला के सबसे बड़े प्रबन्धक और व्यवसायी श्रीकृष्ण पहलवान ने कानपुर से नौटंकी को पूरे उत्तर भारत में प्रसारित किया। इनका जन्म 1891 में उन्नाव जिले के हाड़हा गाँव में हुआ था। जैसा कि नाम से ही ज्ञात होता है ये पहलवान थे जो इन्हें पारिवारिक विरासत के रूप में मिली थी।[2] इनका पुरा नाम श्रीकृष्ण खत्री पहलवान था अपने शुरुआती दिनों में ये दर्जीखाने का कारख़ाना चलाते थे जिसमें नौटंकियों में प्रचलित वस्त्र बनाते थे।[3] अपने प्रकाशन से प्रकाशित

[1] राम नारायण अग्रवाल, सांगीत एक लोकनाट्य परंपरा, पृ. 286

[2] खेमचंद यदुवंशी, 'कानपुरी नौटंकी के उन्नायक थे श्रीकृष्ण पहलवान', 'कला वसुधा', अक्तूबर-दिसंबर 2018 पृ. 142

[3] खेमचंद यदुवंशी, 'कानपुरी नौटंकी के उन्नायक थे श्रीकृष्ण पहलवान', 'कला वसुधा', अक्तूबर-दिसंबर 2018 पृ. 142

सभी नौटंकी आलेख में अपना पहलवानी वाला फोटो लागते थे। बाद में नौटंकी के व्यवसाय में आए और एक साथ इन्होंनें कई भूमिकाओं का निर्वाहन किया। उस समय ये कानपुर नौटंकी शैली पर्याय बन गए थे। इन्होंनें मुल्लाराय की मदद से 1913 ई. 'श्रीकृष्ण सांगीत कंपनी' की स्थापना की।[1] श्रीकृष्ण पहलवान ने एक साथ संयोजक, अभिनय कलाकार, लेखक और प्रकाशक की भूमिका का निर्वहन किया।

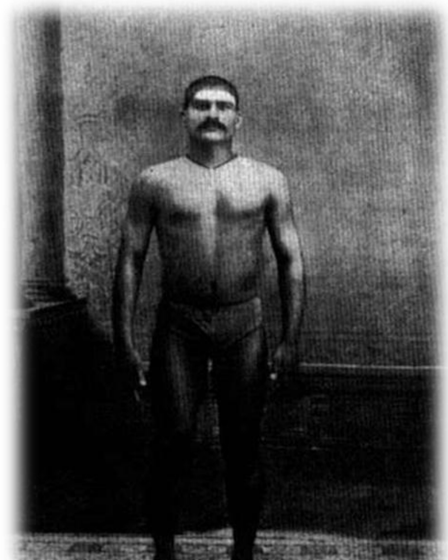

श्रीकृष्ण पहलवान
स्रोत: यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस ई-बुक

श्रीकृष्ण खत्री पहलवान आर्यसमाज के आंदोलन से प्रभावित थे, इससे प्रेरणा लेकर समाज-सुधार से प्रेरित नौटंकियाँ लिखीं। इनका समय द्वाधीनता आंदोलन का समय था उससे प्रभावित होकर भी इन्होंनें खूब नौटंकी लिखी। समाज सुधार की प्रेरणा से पोषित इनकी नौटंकी 'धर्मवीर हकीकतराय' बहुत लोकप्रिय थी। ऐतिहासिक नौटंकियों की प्रस्तुति भी श्रीकृष्ण पहलवान ने की थी। ऐतिहासिक नौटंकियों में इन्होंनें महारानी पद्मिनी, शिवाजी, और वीर मतीजैसी नौटंकियों की प्रस्तुति की। कैथीरिन हैन्सन ने इनके बारे में लिखा है कि "Shrikrishna's early plays dealt with historical figures such as Haqiqat Ray, Maharani Padmini, Shivaji, and Virmati, who defended Hindu faith and territory against Muslim armies and were in most cases martyred. At this time, Shrikrishna was under the influence of the Arya Samaj, a Hindu reform movement espousing the superiority of

---

[1] खेमचंद यदुवंशी, 'कानपुरी नौटंकी के उन्नायक थे श्रीकृष्ण पहलवान', 'कला वसुधा', अक्तूबर-दिसंबर 2018 पृ. 143

ancient Vedic civilization."[1](श्रीकृष्ण पहलवान के प्रारम्भिक नाटकों में हकीकत राय, महारानी पद्मिनी, शिवाजी और वीरमती जैसे ऐतिहासिक व्यक्तियों पर नौटंकी की, जिन्होनें मुस्लिम सेनाओं के खिलाफ लड़ाई लड़ी और ज्यादातर शहीद हुए। इस समय श्रीकृष्ण पहलवान आर्यसमाज के प्रभाव में थे, जो हिन्दू सुधारवादी आंदोलन था और प्राचीन वैदिक सभ्यता की श्रेष्ठता शता को दर्शाता था।) यह वह समय था जब हम अपना इतिहास अंग्रेजों के द्वारा जान रहे थे। इस कारण प्रतिक्रियावादी तत्वों का आना स्वाभाविक है। लेकिन इनका साम्राज्यवाद के खिलाफ लड़ाई में जो योगदान रहा वह भी याद रखने वाली बात है। ये कांग्रेस के कार्यक्रमों में भी सक्रिय रूप से सम्मिलित होते थे।[2] जालियावाला बाग कांड पर 'खून-ए-नाहक' नौटंकी का खूब मंचन हुआ। इस तरह श्रीकृष्ण पहलवान के नौटंकी साम्राज्यवाद विरोधी विचारों को आम जनमानस में प्रसारित करती हुयी दिखाई देती हैं। श्रीकृष्ण पहलवान के नौटंकी व्यवसाय और उसके प्रचलन से संबन्धित रजनीकान्त शुक्ल लिखते हैं कि "उन दिनों 'भगतसिंह' नौटंकी के प्रदर्शन के शुरू में जंजीरों में जकड़ी भारतमाता का सीन होता था। बाद में गांधी, सुभाष, नेहरू, झांसी की रानी, बहादुरशाह जफर आदि खेल आए। ये और इनके जैसे अनेक खेल श्रीकृष्ण पुस्तकालय से छपकर पूरे देश में साप्ताहिक हाटों, मेलों में बिककर छोटी-छोटी मंड़लियों द्वारा खेले जाते थे।"[3] इस तरह इनका नौटंकी प्रदर्शन का व्यवसाय करीब 40 वर्षों तक चला। बाद में नौटंकी प्रदर्शन का काम छोडने के बाद में इनका नौटंकी प्रकाशन कार्य का व्यवसाय चलता रहा। 1972 ई में इनकी मृत्यु हुयी।[4] इस तरह

---

[1] Kathryn Hansen, Ground for Play the nautanki theater of north india, P-110

[2] खेमचंद यदुवंशी, 'कानपुरी नौटंकी के उन्नायक थे श्रीकृष्ण पहलवान', 'कला वसुधा', अक्तूबर-दिसंबर 2018 पृ. 143

[3] रजनीकान्त शुक्ल, नौटंकी को अपना अंदाज़ बदलना होगा, कल का हिंदुस्तान,(ब्लॉग) ,2016 जुलाई 8

[4] खेमचंद यदुवंशी, 'कानपुरी नौटंकी के उन्नायक थे श्रीकृष्ण पहलवान', 'कला वसुधा', अक्तूबर-दिसंबर 2018 पृ. 144

श्रीकृष्ण कृष्ण पहलवान ने नौटंकी को दूर-दूर तक लोकप्रिय किया। रंगमंच को इन्होंनें सिर्फ व्यवसाय की तरह नहीं देखा कला को लेकर एक प्रतिबद्धता इनमें देखने को मिलती है।

चित्र: गुलाब बाई
स्रोत: संगीत नाटक अकादमी

3.4.3 गुलाब बाई: गुलाब बाई को गुलाब जान नाम से भी जाना जाता है। 1926 में जन्मी| यह कानपुर नौटंकी मल्लिका अपनी कला प्रतिभा से कानपुर नौटंकी की पहचान बन गईं।[1] गुलाब बाई का जन्म उत्तर प्रदेश के फरुखाबाद जिले में हुआ था। उन्होंनें 14-15 वर्ष की उम्र में त्रिमोहन लाल की नौटंकी मंडली में प्रवेश किया था। त्रिमोहन के प्रशिक्षण से गुलाब बाई नौटंकी की बड़ी कलाकार बनकर नए प्रतिमान की तरह स्थापित हुईं। गुलाब बाई नौटंकी में काम करने वाली उस पहली महिला के रूप में विख्यात हैं। उनका अभिनय और गायकी इनके कला-क्षमता की जान है। उन पर वृत्तचित्र (डॉक्यूमेंट्री) बनाने वाले कृष्ण राघव ने इनकी कलात्मक प्रतिभा को ध्यान में रखते हुए लिखा है "गुलाब बाई नौटंकी की सुपर स्टार थी, दादरा, ठुमरी और उत्तर प्रदेश के लोकगीत की अनोखी गायिका थीं, गायिकी की शैली उनकी अपनी भी थी। छोटी-छोटी मुकरियों से उनका गला भरा पड़ा था"।[2] यही कला प्रतिभा के दम पर वह विख्यात हुईं।

गुलाब बाई ने लगभग बीस वर्ष त्रिमोहन के पास काम करने के बाद अपनी अलग नौटंकी मंडली 'गुलाब थिएट्रिकल कंपनी' नाम से बनाई। गुलाब बाई ने इस

[1] दीप्तिप्रिया मल्होत्रा, नौटंकी की मालिका गुलाब बाई, पृ. 40
[2] कृष्ण राघव, एक थी गुलाब, रंग प्रसंग, वर्ष 3 अंक 1 पृ. 19

मंडली के जरिए कानपुर की नौटंकी की सीमाओं से परे विदेशों तक पहुंचाया। गुलाब बाई ने अपनी तीन बहनो और दो बेटियों को भी नौटंकी से जोड़ा। इनके समय में कानपुर शैली की नौटंकी अपने शिखर पर थी, गुलाब की गायकी सुनने के लिए हजारों लोगों की भीड़ जमा होती थी। गुलाब बाई नौटंकी में गायन के लिए इतना चर्चित थी की उनके गानों का संगीत कैसेट रिकॉर्ड होकर बिकने लगे। इस तरह इन्होंनें नौटंकी की अनवरत सेवा की।

निष्कर्ष: इस तरह देखा जाए तो कानपुर शैली की नौटंकी का प्रारम्भ पूर्व प्रचलित नौटंकी की हाथरस शैली के अखाड़े द्वारा दी गयी एक सामान्य प्रतिस्पर्धा के कारण हुआ। यह समय उन्नीस सौ दस के आसपास का था। कानपुर शहर की कुछ विशेष परिस्थितियों में यह रंगमंच पल्लवित और विकसित हुआ। कानपुर शहर अंग्रेजी हुकूमत के समय चर्चित था और औद्योगिक नागरी के रूप में आकार ले चुका था। इस नगर में मजदूरों की बहुत बड़ी संख्या दर्शक के रूप में वर्तमान थी साथ ही प्रत्येक वर्ष मेले और आयदिन बड़ी-बड़ी बाज़ारों के कारण नौटंकी के दर्शकों की कमी नहीं थी। इन सब वजहों से नौटंकी के कुछ कलाकारों ने परंपरागत नए रूप में पोषित और प्रसारित किया। नौटंकी एक लोकनाट्य की संरचना जन्मा कानपुर में लोक से अधिक लोकप्रिय रंगमंच बन गया। इस लोक प्रिय होने का खतरा भी बहुत है वह इस नौटंकी रंगमंच ने भी सहा। कानपुर की मंडलियाँ व्यावसायिक अधिक थी जिनसे नौटंकी लोकप्रिय हुयी। इससे एक फायदा यह हुआ कि नौटंकी को आर्थिक समस्याओं से नही लड़ना पड़ा। उसके कलाकार और मंडली के मालिक सभी इससे जीवकोपार्जन करते थे।

कानपुर शैली के नौटंकी के बड़े प्रयोगकर्ता त्रिमोहन उस्ताद और श्रीकृष्ण पहलवान हुए। त्रिमोहन उस्ताद हाथरस नौटंकी कला की जो समझ बना कर आए थे, उसमें तत्कालीन प्रचलित अन्य नाट्य तकनीकों का प्रयोग कर इसे विशिष्ट बनाया। जिसे बाद में कानपुर नौटंकी शैली के नाम से जानते हैं। त्रिमोहन ने वाद्ययंत्र नगाड़े को अलग अंदाज में प्रस्तुत किया जो बाद में कानपुर नौटंकी की पहचान बन गया। इसके साथ ही नौटंकी के प्रस्तुति-विधान में पद्यात्मक संवादों की जगह गद्य में संवादों का प्रयोग करना शुरू किया। यह प्रयोग यही तक सीमित नहीं रहें कानपुर के श्रीकृष्ण पहलवान ने इसमें अपने कलात्मक और प्रतिभाशाली व्यक्तित्व से इसे एक प्रतिमान तक पाहुचाया। श्रीकृष्ण ने चार नौटंकी मंडलियाँ बनाई जिन्हें सम्पूर्ण हिन्दी क्षेत्र में भेज कर नौटंकी का प्रदर्शन कराया। श्रीकृष्ण पुस्तकालय से नौटंकी आलेखों की प्रतियों का व्यवसाय श्रीकृष्ण ने खूब किया। इस लोकप्रिय नौटंकी में नए विषयों का समावेश हुआ। स्वाधीनता आंदोलन की चेतना का प्रसार किया और साम्राज्यवादी शक्तियों का विरोध। कानपुर शैली की नौटंकी ने रूप और कलागत तकनीक के स्तर पर पारसी रंगमंच से सर्वाधिक प्रभावित रही। मंच सज्जा में दृश्य अनुकूल पर्दों का प्रयोग, प्रकाश व्यवस्था आदि पारसी रंगमंच से लेकर यह आगे बढ़ी। इसका सर्वाधिक प्रतिद्वंदी पारसी रंगमंच था इस कारण इस शैली में पारसी रंगमंच जैसी मनोरंजन प्रियता इसमें भी प्रचलित हो गयी। रंगा (विदूषक) आदि अपने मूल कार्यों से हटकर हल्के मनोरंजन के साधन बनते गए। लेकिन ऐसी पतनशील चीजें बहुत बाद में हुईं।

कानपुर नौटंकी शैली में जिस तरह नए-नए विषयों का विस्तार हुआ वह प्रशंसनीय है। नौटंकी की परंपरागत धार्मिक-पौराणिक विषयों से अतिरिक्त सामाजिक राजनीतिक परिस्थितियों को चित्रित करने वाली समस्याओं को भी कानपुर शैली की नौटंकी ने दिखाया। बहादुर शाह जफर, भगत सिंह, महात्मा गाँधी आदि स्वाधीनता के

योद्धाओं पर नौटंकी खेली गई। पौराणिक और धार्मिक विषयों में भी तत्कालीन समस्याओं का चित्रण सांकेतिक रूप में कर दिया जाता था। इन सब कारणों से अंग्रेजी सरकार को 1876 में एक एक्ट लाना पड़ा जिसके अनुसार प्रदर्शन से पहले नाट्य आलेख की एक प्रति अंग्रेजी सरकार के पास जमा करानी होगी। प्रदर्शन के अतिरिक्त इसके नाट्य-आलेखों का भी एक बाज़ार विकसित हुआ जिसमें श्रीकृष्ण पहलवान और त्रिमोहन उस्ताद की बड़ी भूमिका है। सामाजिक नौटंकी वो है जो अपने समाज से सही मायने में जुड़ती हैं। समाज की समस्याओं में जातिगत शोषण या सूदखोरी की समस्या आदि भी नौटंकी में प्रस्तुत की जाती रही हैं। स्त्रियॉ के मन की बात स्त्री कलाकारों के व्यंग्य और लोकगीतों में प्रेषित होती है। तमाम नौटंकियों में स्त्री समस्याओं को दिखाया गया लेकिन इनके अधिकारो के लिए स्त्रियों को कोई प्रतिरोध की ज्वाला देने में असफल रही है।

इन शैली की कला और तकनीक रंगमंच की अपनी शैली हैं। वाद्ययंत्र, मंच के तकनीकी साधन और नाट्य की प्रस्तुति लगभग सभी कुछ लोकमानस की जातीय कलारूप का नमूना है। कानपुर शैली का नगाड़ा अपनी अलग पहचान बनाता है। लोकगीतों के गायन पर लखनऊ संगीत शैली का प्रभाव तो है लेखन गीत और संगीत पर लोकगीतों और धुनों का पूर्ण प्रभाव है। कानपुर की गायन शैली की अपनी पहचान है। इसके गायन में ठहराव हाथरस की अपेक्षा अधिक है जबकि छंद-विधान में कोई विशेष अंतर नहीं है। ठेठर नाम का छंद कानपुर में पारसी रंगमंच से आया है।

त्रिमोहन उस्ताद और श्रीकृष्ण पहलवान कानपुर नौटंकी के जनक हैं। एक ने शुरू किया तो दूसरे उसमें कलात्मक प्रयोग। नौटंकी के लिए दोनों ही महानुभाव इतिहास पुरुष हैं। कानपुर शैली को बुलंदियों तक पहुँचाने के लिए गुलाबजान प्रसिद्ध

हैं। इनके समय-काल में नौटंकी के विदेशों में तमाम प्रदर्शन हुए। इनकी की प्रतिभा को पहचान कर भारत सरकार ने इन्हें पद्मभूषण से नवाजा और संगीत नाटक अकादमी ने इहें पुरस्कृत किया। यह एक चिंतित कर देने वाली बात है कि जिस तरह नौटंकी लोकप्रिय होकर जनमानस के हृदय में बस गई वहीं नौटंकी ने अपने कर्तव्य से च्युत होकर एक नृत्य में बदल गईं। इस बदलाव में वह रंगमंचीय तत्व को भूलती जा रही है। यह सब इसके लोकप्रिय हो जाने के कारण हुआ। लोकप्रिय होने में वह अपनी जड़ से उखड़ती गयी और मुरझा गयी।

<u>उपसंहार</u>

नौटंकी आम-जनमानस का संचार माध्यम है, गरीब मजदूर आज भी नौटंकी के नाम से खिल उठते हैं। लोक विधाए लोगों के हृदय में निवास करती हैं। नौटंकी रंगमंच आज हृदय में तो है लेकिन हक़ीक़त में तमाम तरह की बाधाओं में फसा है। नौटंकी रंगमंच एक प्राणवान नाट्य-विधा हैं, इसपर कार्य और प्रयोग किए होते तो आज हिन्दी रंगमंच की गति कुछ और होती। हिन्दी रंगमंच कम-से-कम अपनी गीति-नाट्य परंपरा को नौटंकी माध्यम द्वारा आसानी से जोड़ पाता। नौटंकी रंगमंच के अन्वेषण से यही सिद्ध होता है जिसकी तरफ संकेत करते हुए जावेद अख्तर खाँ लिखते हैं कि “हिन्दी रंगमंच की लोकधारा भी ऐसा ही अक्षय स्रोत है और यही हमारा मूल है, लोकनाट्य ही दरअसल हिन्दी रंगमंच के आदिनाट्य हैं। इसी से हम अपने इतिहास का खाका खींच सकते हैं।”(हिन्दी रंगमंच की लोक धारा, पृ.31) नौटंकी के अध्ययन से ज्ञात होता है कि हिन्दी रंगमंच के विकास में यह लोकनाट्य सक्षम कार्य कर सकता है।

नौटंकी में गायन और संगीत की प्रधानता के कारण इसकी तुलना पश्चिमी देशों के इटली में जन्में ऑपेरा से की जा सकती है। ओपेरा और नौटंकी दोनों को लगभग भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में समान समस्याओं का सामना करना पड़ा लेकिन ओपेरा हमारे सामने सीना ताने सीधा खड़ा जबकि आज नौटंकी हालत ओपेरा जैसी नहीं है। नौटंकी नाट्य की प्रासांगिकता के कारण युनेस्को ने वर्ड हेरिटेज सूची में सामील किया है। वैसे नौटंकी एक जीवंत नाट्य विधा उसे हेरिटेज सूची में समिल करने मतलब है का प्रौढ़ पिता को वृद्धाश्रम में रखना। नौटंकी का छंद-विधान न सिर्फ नाटक के लिए जीवंत एवं आम जनता हृदय में वास करने वाले काव्य का भी नमूना है। दोहा का एक

रूप शास्त्रीय है तो दूसरा रूप लोक है यह लोक में बसने वाला दोहा भी इसमें है शास्त्रीय दोहा भी। नौटंकी में जो गायन की शैली प्रयोग की जाती है वह भारतीय लोक नाट्य में अनूठी है। नौटंकी ने पारसी रंगमंच से सीखा है कि बिना किसी बड़े तामझाम के प्रदर्शन लिए कलात्मक मंच तैयार किया जा सकता जिसमें हमारे लोक समाज का भी अपना स्थान है। यह कलात्मकता रंगमंच महानगरीय रंगशालाओं से बहुत अलग है। नौटंकी में विषयगत प्रयोग की पूर्ण संभावना है, अपने इतिहास में नौटंकी ने नए और प्रासांगिक विषयों को जोड़ा भी है। स्वाधीनता आंदोलन हो या समाज की प्रेरणा से नौटंकी प्रस्तुति सभी उद्देश्यों को पूर्ण करने की संरचनागत विशिष्टता नौटंकी में वर्तमान रही है। इस तरह से नए कलात्मक प्रयोगों की भी नौटंकी में संभावना दिखाई देती है।

नौटंकी में जो आधुनिक प्रयोग किए गए हैं उससे इस रंगमंच की जीवंतता प्रमाणित हो जाती है। इन प्रयोगों कुछ सफल रहे तो कुछ असफल, असफल होने का कारण यह दिखाई दिया कि नौटंकी की छंद और उस आधार पर गायन से उसकी पहचान धूमिल पड़ जाती है। नौटंकी में आधुनिक प्रयोग करने वालों में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, मुद्राराक्षस, उर्मिल कुमार थपलियाल आदि गिने चुने नाम है। इसके अतिरिक्त कुछ नाट्य समूहों ने प्रेमचंद की कहानियों का नौटंकी में नाट्ययांतरण किया। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने 'बकरी' नाटक में प्रयोग सफल रहा लेकिन नौटंकी की आत्मा छंदों की विविधता गायकी में रहती है। छंद और प्रस्तुतीकरण में वह ढीला पड़ जाता है। इस क्षेत्र मुद्राराक्षस के 'आला अफसर' और 'डाकू' नाटक से चर्चित रहे। उर्मिल कुमार थपलियाल ने 'हरिचन्नर की लड़ाई' नाट्य प्रस्तुत किया। इलाहाबाद का नाट्य समूह 'स्वर्ग संस्था' ने प्रेमचंद की कहानी 'बूढ़ी काकी' का नौटंकी शैली में प्रदर्शन किया।

नौटंकी शैली में ये सभी प्रस्तुतियाँ इस रंगमंच को आधुनिक संदर्भ में प्रासांगिक तो बनाती ही साथ ये नाटक भी इन शैलियों का जामा पाकर लोकप्रिय रहे हैं।

आज आधुनिक हिन्दी रंगमंच की तमाम समस्याओं में एक बड़ी समस्या आर्थिक है। यह समस्या क्यों उत्पन्न हुयी इसपर विचार हिन्दी रंगमंच में सक्रिय कलाकारों और विद्वानों करना चाहिए क्योंकि हिन्दी के पारंपरिक रंगमंच नौटंकी में यह समस्या नहीं है। अपने प्रचलन समय में नौटंकी मंडलियाँ आर्थिक रूप से सम्पन्न हुआ करती थी, नौटंकी से कलाकारों की जीविका सम्पन्नता से चलती थी। नौटंकी के सभी अखाड़े व्यावसायिक हो गए थे। कानपुर की नौटंकी मंडलियों पर व्यावसायिकता का मोह अधिक था हाथरस की अपेक्षा। इन मंडलियों मालिक जो कलाकार ही होते थे, वह मंडली का एक मानेजर (मुंसी) नियुक्त करते थे जो आर्थिक मामलो को देखता था। मंडलियों में काम करने वाले कलाकारों का मासिक वेतन होता था। इस तरह नौटंकी अपने उत्कृष्ट काल में आर्थिक समस्याओं से नहीं जूझी। इस कारण नौटंकी बहुत लोकप्रिय हुयी। कानपुर नौटंकी मंडलियाँ एक तरह बाढ़ सी आ गयी थी। इसमें ध्यान रखने वाली विशेष बात है कि इन मंडलियों का उद्देश्य सिर्फ पैसा कमाना नही था। इनके कलाकार अपनी कला के प्रति बहुत ही 'फैशनेबल' थे। कलात्मक प्रतिबद्धता के कारण कलाकार नौटंकी मंडली छोड़ कर दूसरी में शामिल हो जाते थे। हिन्दी रंगमंच को इस अपनी समस्याओं के लिए नौटंकी की तरफ ध्यान देना चाहिए। जबकि एक कला के व्यावसायिक होने के खतरे भी हैं।

इस तीन अध्यायी लघु शोध-प्रबंध में हिन्दी रंगमंच के लोकधारा की एक शैली का अन्वेषण किया गया है। यह लोक शैली नौटंकी हिन्दी प्रदेश में लोकप्रिय शैली थी तो आज आज विलुप्ति के कगार पर खड़ी है। इसके तमाम कारण है। यह कारण छोटे

नहीं हैं इनका सामना तीसरी दुनिया के सभी देश अपनी लोक संस्कृति बचाने के लिए कर रहे हैं। एक सोची समझी नीति के तहत साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा भारतीय लोक-कलाओं का हरण किया है।

भारत में आधुनिक कला एवं साहित्य पर उपनिवेशवादी सांस्कृतिक वर्चस्व का प्रभाव रहा है। नाट्यकला पर इस संस्कृति का प्रभाव इतना पड़ा कि हिन्दी ने अपना पारंपरिक रंगमंच त्याग कर पोर्सेनियम प्रकार के रंगमंच को अपनाया जबकि देखा जाए तो भारतीय समाज और नाटक कि समाजिकता के लिए हिन्दी के पारंपरिक रंगमंच सबसे अधिक अनुकूल हैं। औपनिवेशिक संस्कृति का दबाव यह रहा कि एक सम्पूर्ण नाट्यविधाएँ जिसका स्थान जनता के बीच होना चाहिए था वह आज प्रोसेनियम थियेटर में प्रवेश कर गई। जबकि होना यह चाहिए था कि पोर्सेनियम थिएटर में मंचित नाटकों को हमारी परम्परागत नाट्य शैली नौटंकी आदि में प्रस्तुत किया जाता, तभी रगमंच की समाजिकता सिद्ध होती।

नौटंकी रंगमंच जनता के द्वारा निर्मित जनता का रंगमंच है, इसमें रूढ़ परंपरावादी शोषणकारी तत्व भी रहे हैं लेकिन ये तत्व समाज सापेक्ष हर समय के साहित्य में मिलते हैं। गोबिन्द चातक ने लिखा है कि "नाटक और रंगमंच किसी भी जनतंत्र में जनता का होता है जनसाधारण से वह विलग नहीं हो सकता" (रंगमंच और काला दृष्टि, पृ. 38) लेकिन इस पोर्सेनियम थियेटर में न ही वह आम जनता सम्मिलित हो पाती जिसके लिए नाटक लिखे और प्रस्तुत किए जाते हैं और न उनका रचना कौशल इसमें आ पाता है। ऐसे में नाटक का जनतंत्र और उसकी समाजिकता सिर्फ किताबी बात बनकर रह जाती है। नौटंकी रंगमंच जैसा लोक प्रचलित माध्यम हिन्दी क्षेत्र में वर्षों से चला आ रहा है। इसी तरह और नाट्य शैलियाँ जिनसे कट कर हिन्दी रंगमंच आगे बढ़ा और सिथिल होकर रुक गया। ऐसे में हमारे लोक प्रचलित

नाट्य नौटंकी कला की प्रासंगिकता बढ़ जाती है। नौटंकी के कलागत एवं तकनीकी पक्षों का विवेचन करने के बाद यह साफ हो गाया कि हमें भी अपनी परंपरागत कलाओं की तरफ देखना पड़ेगा। तनेजा ने ब. व. कारंत को उद्धृत करते हुए लिखा है कि "हमारा लोकरंगमंच चूँकि जीवंत रंगमंच है, इसलिए आज हमें वही प्रेरणा दे सकता है न कि शास्त्रीय रंगमंच। शास्त्रीय रंगपरम्परा का प्रयोग हम केवल दार्शनिकता या सिद्धान्त के स्तरपर ही कर सकते हैं। संगीत के बिना रंगमंच की चर्चा अधूरी है।...भारतीय संगीत और रंगमंच की चर्चा करनी हो तो नौटंकी, तमाशा, यक्षगान भवाई वगैरह के अलावा भला हम और किस भारतीय रंगमंच की बात कर सकते हैं।" (हिन्दी रंगकर्म दशा और दिशा, पृ.126) पोर्सेनियम थियेटर की संस्कृति से हिन्दी रंगमंच को लाभ कम और हानि अधिक हुयी है। नौटंकी रंगमंच देखें तो पता चलता है कि जिस नाट्य साहित्य के उपयोगिता की बात की जाती वह नौटंकी रंगमंच में है या नहीं।

मेरे विचार से हिन्दी रंगमंच को सामान्य जनता तक पहुँचाने में नौटंकी रंगमंच एक बड़ी भूमिका अदा कर सकता है। कलाकार और दर्शक के बीच गहरे संबंध स्थापित करने पर ज़ोर देते हुए सत्यब्रत सिन्हा ने लिखा है कि "नाटककार और प्रस्तुतुकर्ता का प्रेक्षक से इस प्रकार के तादात्म्य से ही किसी देश के रंगमंच का अभिर्भाव होता है।" (नटरंग, 1986 पृ. 22-23) यह संबंध इस शहरी पोर्सेनियम थियेटर से तो नहीं बनपाता है इसके लिए नौटंकी जैसे ही रंगमंच की जरूरत है जिसमें दर्शक और नाटककार के बीच कोई विशेष खाई नहीं होती है। यही कारण है कि बादल सरकार भी इस आधुनिक शहरी रंगमंच की गति में विरोधाभास बताते हुए, इस पोर्सेनियम थियेटर को अपनी परंपरा से कटा हुआ मानते हैं। इन्हीं कारणों से आज के

शहरी रंगमंच में देशज चरित्र विरक्त है। जबकि नौटंकी रंगमंच के पास आज के शहरी रंगमंच को देने के लिए बहुत कुछ है।

इस लघु शोध-प्रबंध का प्रथम अध्याय 'भारतीय रंगमंच और लोकनाटक' है। रंगमंच के शब्द को लेकर समस्या रही है। विवेचन से स्पष्ट होता है कि रंगमंच शब्द कि एक यात्रा रही है, हिन्दी में प्रारम्भिक दौर में रंगमंच का सिर्फ स्टेज के अर्थ में कुछ नाट्य समीक्षकों इसका प्रयोग किया, बाद में इसका प्रयोग एक नाट्य शैली के अर्थ में होने लगा। रंगमंच शब्द से सिर्फ स्टेज शब्द का द्योतक नहीं है वह एक सम्पूर्ण नाट्य कला का बोध कराता है। इसके समांतर 'नाट्य' शब्द का प्रयोग कुछ विद्वान करते हैं लेकिन यह शब्द प्रचलन में नहीं आ सका जबकि रंगमंच के समांतर ही नाट्य शब्द का भार है। और नौटंकी जैसी संगीतपरक विधाओं के लिए नाट्य शब्द ज्यादा उचित प्रतीत होता है लेकिन आधुनिक नाट्य समीक्षा में रंगमंच का प्रचलन अधिक है।

भारत में रंगमंच का इतिहास सिर्फ भरतमुनि तक सीमित नहीं है, उससे पूर्व लौकिक रंगमंच की परंपरा के सूत्र मिलते हैं। जिनका जिक्र भारतमुनि ने स्वयं किया है। लिखित और शास्त्रीय नाटकों के समांतर एक भारतवर्ष में लोक परंपरा का वर्चस्व रहा है लेकिन आधुनिक साहित्य में इसे प्रोत्साहन अवश्य नहीं मिला जो प्रोत्साहन मिलना चाहिए था। मध्ययुग लोकरंगमंच का स्वर्ण युग रहा है। भारत का आधुनिक युग उपनिवेशवादी सत्ता के वर्चस्व के साथ प्रारम्भ हुआ इस कारण भारतीय लोक-परम्पराओं की तरफ इस युग के विद्वानों का ध्यान नहीं और ध्यान भी गया तो कुछ खास कार्य नहीं हुए। आधुनिक रंगमंच परंपरा से कट गया। हिन्दी के क्या सम्पूर्ण भारतीय पारंपरिक रंगमंच को लोकनाटक की श्रेणी में रख कर बौद्धिक भूख को शांत किया जाता रहा।

लोक शब्द को परंपरागत कलाओं के लिए विद्वानों ने उचित समझा और उसकी तुलना पश्चिम के फोक के शब्द से की। वैसे जनजातियों या तथाकथित सभ्य समाज से इतर जो परंपरागत साहित्य और कलाएं हैं उनके लिए पश्चिम ने फोक (folk) शब्द दिया। इस फोक के पर्याय के अर्थ में हमने लोक शब्द लिया जबकि अर्थ क्षेत्र संदर्भ की दृष्टि से इन दोनों शब्दों में एक भिन्नता है। लोकनाटक भारत की सांस्कृतिक विरासत में विखरे हुए पड़े हैं। इनकी परंपरा के सूत्र बहुत प्राचीन हैं। भारत की हर भाषा और बोली में परंपरागत नाटक सक्रिय हैं जिन्हें हम लोक नाटकों की संज्ञा देते हैं।

इन लोक नाटकों में नौटंकी उत्तर भारत की खासकर हिन्दी प्रदेशों में सर्वाधिक लोकप्रिय विधा रही है। नौटंकी रंगमंच उस समाज के परंपरागत लोक प्रदर्शनों का विकसित रूप है जो उससे पूर्व में प्रस्तुत किए जाते थे। नौटंकी का इतिहास बहुत भ्रामक है एक तो उसके नाम को लेकर दूसरा नौटंकी के संयोजन को लेकर। नौटंकी शब्द की उत्पत्ति कोई नौटंकी नाम की शहजादी के नाम से जोड़ता है तो कोई नौटंकी को नाट्य शब्द के संदर्भ में रखकर देखता है। नौटंकी का इतिहास तो वैसे बहुत प्राचीन है लेकिन जिस प्रकृति के कारण आज नौटंकी को नौटंकी रंगमंच कहा जाता है, वह स्वरूप इस रंगमंच को लगभग 1700 ईस्वी के आसपास मिला। इसी परंपरा के रंगमंच स्वांग, भगत, सपेड़ा ख्याल आदि नौटंकी के पूर्व नौटंकी के क्षेत्र में प्रचलित थे। इन विधाओं को समेट कर ही नौटंकी एक व्यापक रंगमंच विधा बनपायी है। इसके इतिहास का महत्वपूर्ण पड़ाव हाथरस और कानपुर के घरानो का है। बाद में यही नौटंकी की शैलियों के रूप में विकसित हुयी। नौटंकी की इन दोनों शैलियों का आधार इनकी गायकी एवं संवाद अदायगी है। हाथरसी शैली में गायन के साथ अंगीय अभिनय पर बल अधिक दिया जाता है जबकि कानपुरी शैली में संवाद पद्यात्मक के साथ-साथ नृत्य की भी प्रधानता होती है। हाथरस की नौटंकी का स्वांग अथवा भगत नाम से

अधिक प्रचलित है। कानपुरी शैली की नौटंकी को सिर्फ़ नौटंकी या तमाशा कहा जाता है। इन शैलियों की प्रस्तुति-विधान में विशेष अंतर है।

नौटंकी मध्यप्रदेश, राजस्थान और बिहार आदि में खूब विख्यात हुयी। राजस्थान के भरतपुर शैली की नौटंकी है। इसी तरह उत्तर प्रदेश में भी मथुरा, मेरठ और लखनऊ में नौटंकी का प्रदर्शन अलग अलग शैली और कलात्मक प्रयोग के साथ होते हैं। लोकरंगमंच के कारण प्रस्तुतिगत विशेष बंधन नहीं होता। बिहार में नौटंकी का प्रदर्शन इसके प्रारम्भिक दौर से प्रचलित है। वहाँ भिखारी ठाकुर ने नौटंकी की एक भिन्न शैली तैयार की जो विदेसिया नाम से लोकप्रिय है। इस तरह स्पष्ट होता है कि अपनी-अपनी स्थानीय गायकी, छंद विधान और भाषा में प्रस्तुत होने के करण भिन्न-भिन्न शैलियों में इस रंगमंच का प्रदर्शन प्रचलित रहा है। नौटंकी का प्रचलन-क्षेत्र हिन्दी प्रदेश ही प्रमुखता से रहा। इस समाज के पास ऐसी लोक विधाएँ थी जिन्हें आधुनिक हिन्दी नाटककारो ने भुला दिया। हिन्दी रंगमंच में लोक परम्पराओं की नौटंकी जैसी रंगमंच की तमाम शैलियाँ रही हैं। नौटंकी आज भी प्रचलित है लेकिन अपने कलात्मक रूप में न रहकर वह एक तरफ रूढ़ ढर्रे पर प्रस्तुत की जाती है या फिर व्यावसायिक उद्देश्य से नाच-गाना गवाकर उसका मनोरंजन किया जाता है।

परवर्ती काल में फ़िल्मी 'रंगीन' गीतों ने नौटंकी पर धाक जमा, उन्होंने उपरोक्त पारंपरिक गीतों का स्थान ले लिया । इस तरह डिस्को डांस की तरफ नौटंकी बढ़ने लगी, यही इसकी बिडम्बना है। नौटंकी को सामंती-रहीसों ने धीरे-धीरे अपनी विलासिता का साधन बना लिया, जिससे फुहड़ता और अश्लीलता नौटंकी कला पर हावी होने लगी। इसका मुख्य कारण, धनाढ्यौँ द्वारा नौटंकी में कार्यरत गरीब व निम्न जाति के लोक कलाकारों को पैसा और शक्ति के द्वारा विलाशिता के साधन के रूप में

नियंत्रित कर लिया। उन्होंने नौटंकी के नाम पर अश्लील नृत्य और हास-परिहास की फरमाइश की, जिसको पूरा करना नौटंकी कर्मियों की मजबूरी रही। अब स्थिति यह है कि अपने को सभ्य कहलाने वाला व्यक्ति लोक कला नौटंकी से परहेज करने लगा।

नौटंकी की रंगमचीय विशेषताएँ उसे ब्रेख्त की नाट्य दृष्टि से जोड़ती हैं। इस गीत-संगीत प्रधान विधा में पहली दृष्टि मनोरजन की होती है जिससे अभिनय और नाटक का पूर्ण ज्ञात होता है। आम जनमानस की द्वितीय दृष्टि उसके संवेदनात्मक पक्ष पर पड़ती है जब उनको उसका कथ्य प्रभावित करता है।

नौटंकी रंगमंच पर जो आजकल फूहड़ होने का आरोप ज़ोर पकड़ रहा है। सामान्य जनों के जो संस्कार हैं उससे कई बार फूहड़ लगती भी है। इस संदर्भ में यह जान लेना आवश्यक है कि रंगमंच की सत्ता क्या है किसके हांथों संचालित होती है ? नौटंकी के साथ भी इन्हीं सत्ताओं की कारस्तानी रही। रांगमंच के संदर्भ में चार्ल्स ऐल्सन ने लिखा है कि “रंगमंच बहुत ही शक्तिशाली कला माध्यम है, क्योंकि उसकी वाणी दर्शकों तक सीधी पाहुचती है। इसलिए सदियों से अधिकृत सत्ता या तो उसे प्रभावित कर अपने उपयोग में लेती आई है या फिर उसकी वाणी से डरकर उसे दबाती आई है और उस पर नाना प्रकार के प्रतिबंध लगाती रही है।”(‘संस्कृति’ जून-जुलाई 1960 पृ. 11) नौटंकी के इतिहास में भी यही घटनाएँ घटी हैं, जब नौटंकी रंगमंच को उच्च घरानों ने अपने मनोरंजन में तब्दील कर दिया। अपनी विलासिता का साधन बना लिया तो उसे नकार भी उसी समाज ने दिया। नौटंकी रंगमंच में जन जाग्रति का स्वर रहा जिसमें जमीदारी, जाति-व्यवस्था आदि सत्ताओं पर तंज़ कसे जाते रहे हैं। यहाँ तक कि स्वधिनता की लड़ाई में नौटंकी की भी एक भूमिका रही है।

इन उपयोगितावादी दृष्टियों से देखने पर भी ज्ञात होता है कि नौटंकी रंगमंच की स्थिति आज जो है वैसा रंगमंच तो यह नहीं रहा।

नौटंकी और स्त्री के संदर्भ में देखा जाए तो स्पष्ट होता है कि फूहड़ता एक सामाजिक जड़ता है जो पारंपरिक समाज को वैसा ही बनाए रखना चाहता है। पित्रसत्ता, सामंती-जातिवादी विचार आदि सबसे ज्यादा फूहड़ता का विरोध करते हैं लेकिन जब बात स्त्री-विमर्श की की जाएगी तो एक नया विमर्श सामने आ सकता है। स्त्रीवादी सिद्धान्त कहता है कि समाज में जो लैंगिक असमानता है वह सामाजिक संरचना और संस्कृति के द्वारा निर्मित की जाती है। इसलिए सामाज में शादी, परिवार और समुदाय के लिए सतत नियम निर्मित किए जाते हैं। वह पारंपरिक सत्ताओं को ही पोषित करता। वर्चस्वशाली समाज ने मनोरंजन को भी नियंत्रित किया है इसकी प्रतिकृया स्वरूप शोषित समाज एक स्वयं को अभिव्यक्त करने का एक रास्ता नौटंकी के माध्यम से निकाल। तथाकथिक फूहड़ता भी एक लैंगिक अभिव्यक्ति होती है जब तक कि वह पूँजी या बाहरी दबाव से संचालित न हो। स्त्री कलाकारों के लिए स्वयं को अभिव्यक्त करना भारत की परम्म्परिक सामाजिक संचना के खिलाफ है इसलिए उनका नृत्य, अभिनय में अभिव्यक्ति मानस को फूहड़ता की दृष्टि से पारंपरिक समाज ने देखा। उन्होने अपने तमाम काला रूपों; लोकगीत, नकटा आदि में अपनी लैंगिक स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति को स्पष्ट किया है। नौटंकी में जिसे हम फूहड़ता है एक स्तर तक वह स्त्री एव पुरुष अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता है जब तक कि किसी पुरुष विलासिता और किसी भी प्रकार की सत्ता के दबाव से संचालित न हो। यह भी सच है कि अधिकतर इन्हीं दबावों से यह संचालित होती है लेकिन ऐसा हर समय में नहीं रहा है। अधिक सत्य यही है कि पुरुषसत्तात्मक वर्चस्व शाली समाज ने धन और बल से अपनी विलषिता के लिए नौटंकी को भोंडे और विलासी नृत्य में आज बदल दिया है। लेकिन

यह नौटंकी ही है जिसमें विभिन्न आधुनिक कला विधाओं की तरह ही लैंगिक अभिव्यक्ति की स्वांतंत्रता रही है। अब नौटंकी रंगमंच को अशिष्ट समझे जाने वाले समाज का रंगमंच मान लिया गया। लेकिन एक समय में वह समाज नौटंकी से चेतना भी ग्रहण करता है और इस रंगमंच से चेतना प्राप्त भी करता है। इस अशिष्ट समाज के रंगमंच को विद्वानों ने तवज्जो नहीं दिया।

इसके कई कारण भी हैं एक कारण यह रहा नाटक की शिष्ट परंपरा के नाटककारों का झुकाव प्रोसेनियम थिएटर की तरफ अधिक रहा जिससे लोक रंगमंच की तरफ उनका ध्यान न के बराबर गया। फलस्वरुप नौटंकी एक बहुत ही मनोरंजन होती चली गई जिसमें फूहड़ता नवाबी-सामंती शोषण के करण अपनी पैठ बनाने लगी।

हिन्दी रंगमंच भारतेन्दु के बाद जो एक रिक्तता है उसका कारण भारतेन्दु की नाट्य-संरचना से पता लगाया जा सकता है। भारतेन्दु ने अपनी नाट्य-कला को लोकरंगमंच से सिंचित किया। बाद के नाटककार इस लोकरंगमंच से दूर होकर पोर्सेनियम थियेटर के मुरीद अधिक हो गए जिस कारण हिन्दी रंगमंच अपने समाज से कट गया फलस्वरूप हिन्दी रंगमंच की वेगवाती धारा अवरुद्ध हो गयी। नौटंकी की नाट्य संरचना हिन्दी रंगमंच का भार सहन कर सकती थी। नौटंकी की जो आलोचनाएँ हैं वह उसके मूल में या सैद्धान्तिक नहीं है। एक सत्ता के दबाव से निर्मित हुई हैं। इस तरह नौटंकी हिन्दी प्रदेश की लोक सम्पदा है। इसका लोकसाहित्य अपने समाज-संस्कृति को पूर्ण अभिव्यक्त करने में सफल है। हिन्दी रंगमंच की इसी लोकधारा से निकलनी चाहिए थी जो विभिन्न कारणों से बाधित हो गयी।

<u>संदर्भ ग्रन्थ-सूची</u>

1. किन्नर लोक साहित्य, डॉ. बंशीराम शर्मा, ललित प्रकाशन लौहड़ी सरेल बिलासपुर, हिमांचल प्रदेश 1976
2. नाटक के सौ बरस, हरीशचन्द्र अग्रवाल अजीत पुष्कल, 393. दिल्ली : शिल्पायन , 2013
3. नाट्य प्रस्तुति एक परिचय, रमेश राजहंस, राधाकृष्ण, दिल्ली (1987)
4. नाट्य-समीक्षा, दशरथ ओझा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली द्वितीय संस्कारण
5. नौटंकी की मलिका गुलाब बाई, दीप्ति प्रिया महरोत्रा, पेंगुइन बुक्स, दिल्ली (2010)
6. ब्रज का रास रंगमंच, रामनारायण अग्रवाल, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
7. ब्रजरास लीला स्वरुप और विकास, डॉ. श्याम नारायण पाण्डेय, साहित्य रत्नालय, कानपुर (1992)
8. परंपराशील नाट्य , जगदीशचन्द्र माथुर , राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, दिल्ली
9. बाजत आवे ढोल : एक लोकगीत अध्ययन, देवेंद्र सत्यार्थी,. नई दिल्ली: प्रवीण प्रकाशन, 2005
10. भारतीय काव्यशास्त्र, सत्यदेव चौधरी, अलंकार प्रकाशन दिल्ली 2010.
11. भारतीय नाट्य साहित्य, डॉ. नगेन्द्र (सं.), एस चंद एण्ड कंपनी, दिल्ली (1968)
12. भारतीय रंगमंच का विवेचनात्मक इतिहास, डॉ. अज्ञात, पुस्तक संस्थान, कानपुर(1978)
13. भारतीय लोक-साहित्य श्याम परमार, राजकमल प्रकाशन , बम्बई 1954
14. भारतीय लोक साहित्य परम्परा और परिदृश्य, विद्या सिन्हा, प्रकाशन विभाग भारत सरकार, दिल्ली (2011)
15. भारतीय और विदेशी भाषाओं के नाटकों का इतिहास, डॉ चतुर्भुज, राजस्थान , 1996.
16. मैथिली लोक साहित्य का अध्ययन, ताराकान्त मिश्र, नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2008.
17. रंगदर्शन, नेमिचंद्र जैन, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली (1993)
18. रंगमंच: एक माध्यम, कुँवरजी अग्रवाल, विश्वद्यालय प्रकाशन, वाराणसी (1975)
19. रंगमंच की भूमिका और हिन्दी नाटक, डॉ. रघुवरदयाल वार्ष्णेय, : इंद्रप्रस्थ प्रकाशन दिल्ली, 1984.
20. रंगमंच : देखना और जानना, लक्ष्मीनारायण लाल, सातवाहन प्रकाशन, नयी दिल्ली (1983)

21. रंगमंच: नया परिदृश्य , डॉ. लिपि प्रकाशन, दिल्ली
22. रंगमंच, बलवंत गार्गी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (1968)
23. रंगमंच : लोकधर्मी-नाट्यधर्मी, डॉ. लक्ष्मीनारायण भरद्वाज, के एल पचौरी प्रकाशन, गाज़ियाबाद (1992)
24. लोक नाट्य स्वांग, इंद्र शर्मा 'वारिज', प्रकाशन विभाग भारत सरकार, (2005)
25. लोकनाट्य नौटंकी कुछ प्रश्न, रवीन्द्रनाथ बहोरे व विजय पंडित (सं), उ.प्र. संगीत नाटक अकादमी, लखनऊ (2000)
26. लोक-धारा, हीरामणि सिंह साथी, : अनंग प्रकाशन, नयी दिल्ली 1998
27. लोकधर्मी नाट्य परंपरा, श्याम परमार, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी 1959.
28. लोकसाहित्य की भूमिका, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, साहित्य भवन, इलाहबाद
29. लोक संस्कृति की रूपरेखा, कृष्णदेव उपाध्याय, लोकभरती प्रकाशन, इलाहाबाद 1988.
30. वीर कुंवर सिंह (नौटंकी), सत्यकेतु, साहित्य भंडार, इलाहबाद(2014)
31. सांगीत, एक लोकनाट्य, रामनारायण अग्रवाल, राजपाल एंड संस, दिल्ली
32. सांगीत के विविध आयाम, डॉ. बिरेन्द्र कुमार चंद्रसखी, अजय बुकडिपो दिल्ली 2016
33. सुर बंजारन, भगवानदास मोरवाल, वाणी प्रकाशन, दिल्ली (2017)
34. हिंदी नाटक और रंगमंच, राजकमल बोरा व नारायण शर्मा (सं.), पंचशील प्रकाशन, जयपुर (1988)
35. हिन्दी नाटक, बच्चन सिंह,: साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद 1958.
36. हिन्दी नाटक के सौ वर्ष, (सं.) बादामसिंह रावत बालेंदु शेखर तिवारी, गिरनार प्रकाशन, महेसाना: 1990
37. हिंदी नाटक : सिद्धांत और विवेचन, गिरीश रस्तोगी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
38. हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा, कुंवर चंद्रप्रकाश सिंह, भारती ग्रंथ भंडार, दिल्ली 1964.
39. हिमाचली लोकरंग, डॉ. एन. डी. पुरोहित, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली (1986-87)
40. हिंदी रंगमंच का उद्भव और विकास, डॉ. विश्वनाथ शर्मा, उषा पब्लिशिंग हाउस, जोधपुर (1979)
41. हिंदी रंगमंच की लोकधारा, जावेद अख्तर खां, तक्ष शिला एजुकेशनल सोसायटी, पटना (2013)
42. हिन्दी रंगकर्म, जयदेव तनेजा, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली :1988.

43. हिन्दी रंगमंच विविध आयाम, डॉ. रेखा गुप्ता, बोहरा प्रकाशन, जयपुर 1996.
44. हिन्दी साहित्य का आदिकाल . दिल्ली : वाणी प्रकाशन , 2006
45. Grounds for play: the nautanki theater of north india, Kathryn hansan, university of California press, (manohar publication, delhi), (1991)

पारिभाषिक शब्दावली कोश और शब्दकोश:

1. मानक हिन्दीकोश (चौथा खंड), (सं.) रामचन्द्र वर्मा सं. हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, इलाहाबाद 1965
2. मानविकी पारिभाषिक कोश - साहित्य खंड (सं.) डॉ. नगेंद्र राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1986
3. वर्धा हिन्दी शब्दकोशम. गां. अं. हिन्दी विश्वविद्यालय, , वर्धा 2013.
4. शब्दार्थ-दर्शन, रामचंद्र वर्मा, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद 1968.
5. हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ अमरनाथ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 2012
6. हिन्दी विश्वकोश भाग-20 श्री नगेंद्रनाथ वसु, बी आर पब्लिशिंग कार्पोरेशन, दिल्ली 2008
7. हिन्दी साहित्य कोश, (सं.) डॉ. धीरेंद्र वर्मा, ज्ञानमंडल प्रकाशन वाराणसी, 2011.

लेख (पत्रिकएँ)

1. एक थी गुलाब, कृष्ण राघव, रंग प्रसंग वर्ष 3 अंक 1
2. कला वसुधा (नौटंकी विशेषांक), अक्तूबर-दिसंबर 2018
3. कानपुरी नौटंकी, सुरेश सलिल , रंग प्रसंग वर्ष 3 अंक 1
4. कैथरिन हैन्सेन, सुरेश बफाना, पारंपरिक लोकनाट्य, हिन्दी रंगमंच, नटरंग, 1986 वर्ष-12 अंक-46
5. नाटक रंगमंच और जनता लक्ष्मीनारायण लाल, संस्कृति 24, हेमंत 1886 वर्ष- 6 अंक- 4
6. नौटंकी में अन्य कलाओं का प्रयोग, विजय पंडित, वर्ष-2 अंक -4 (जुलाई-दिसंबर)
7. रंगमंच, रविन्द्रनाथ ठाकुर, वर्ष-2 अंक -4 (जुलाई-दिसंबर)
8. लोकनाट्य के विविध रूप, देवीलाल सामर, वर्ष-2 अंक -4 (जुलाई-दिसंबर)
9. *Nautanki* in the time of independence struggle: the tangled History of *sangeet* and *akharas* by ritivika singh (article)

वेब-लिंक :

1. मंच से उजड़ी मन में बसीः नौटंकी, नारायण भक्त, अभिव्यक्ति हिन्दी (वेब), http://www.abhivyakti-hindi.org/natak/rangmanch/2009/nautanki.htm
2. नौटंकी को अपना अंदाज़ बदलना होगा, रजनीकान्त शुक्ल, कल का हिंदुस्तान https://rajnikantshukla.blogspot.com/2016/07/1910.html
3. नाट्य प्रसंग, भारतेन्दुमिश्र. 27 मार्च 2009. http://natyaprasang.blogspot.com/2009/03/blog-post.html
4. Wishberry, Team. www.wishberry.in. feb 22, 2016. https://www.wishberry.in/blog/the-long-and-amazing-history-of-theatre-in-india/ (accessed november 2018).
5. अस्थाना, एम. पी. हिन्दी नेस्ट डॉटकाम . दिसंबर 25, 2002. http://hindinest.com/bhaktikal/013.htm
6. निरंजन महावर देशबंधु http://www.deshbandhu.co.in/parishist/malva-representative-loknatya-maach-67401-2.
7. 36 ग्राम की स्त्री नौटंकी, अश्विनी कुमार पंकज, http://punjprakash.blogspot.com/2011/12/blog-post_21.html

इलेक्ट्रानिक डोक्युमेंट :

1. एक थी गुलाब, इंदिरा गाँधी कला केंद्र (डॉक्यूमेंट्री)
   Ek thi Gulab- Part 1 of 5
   (https://www.youtube.com/watch?v=7etYFn9EiBw&t=60s)

शोध-कार्य के दौरान
सम्मेलन एवं संगोष्ठी में
प्रस्तुत
शोध-आलेख के प्रमाण-पत्र